अलग-अलग रास्ते

[तीन अंकों का एक सामाजिक नाटक]

उपेन्द्रनाथ अश्क

नीलाभ प्रकाशन

इलाहाबाद-१

प्रथम संस्करण
१९५४

•

मूल्य २॥)

प्रकाशक
नीलाभ प्रकाशन ५ खुसरो बाग रोड, इलाहाबाद, १

मुद्रक
लीडर प्रेस, प्रयाग

कुंवर गजराज सिंह जी के लिए

साभार

हिन्दी की नाटक-परम्परा
में
अलग-अलग रास्ते का स्थान

●

गोपाल कृष्ण कौल

●

हिन्दी-नाटक को वर्तमान विकसित रूप तक पहुँचने के लिए अनेक मंज़िलें तय करनी पड़ी हैं और आज जिस मंज़िल पर वह पहुँच गया है, वहाँ वह स्थिर नहीं है उसमें विकास की अभी अमिट सम्भावनाएँ निहित हैं।

नाटक एक सामाजिक कला है। वह एकान्त एकाकीपन ले कर पनप नहीं सकती। दूसरी ललित कलाएँ एकान्त साधना की सिद्धि हो सकती है, किन्तु नाटक तो अनेक के सहयोग से बनता है। वह बिलकुल सामाजिक प्राणी की तरह पलता-पनपता है। व्यष्टि-निष्ठा और निर्जन योग से उसे सफलता नहीं मिल सकती। नाटक का जन्म ही आदिम मनुष्य में सामाजिकता और परस्पर-सहयोग की भावना के उदय के साथ हुआ था। नाटक तो बनता ही तभी है, जब उसके बनाने में नाटककार (लेखक), नट (अभिनेता), रंगमंच, नृत्य,

संगीत और चित्र-कला (पुराने आचार्यो ने नाटक मे इन तीनों कलाओं का समन्वय माना है) निर्देशक और अनेक दर्शकों आदि का समुचित योग होता है। इन तत्वों और उपकरणों मे से जहाँ भी ज़रा कमी होती है, वहीं नाटक मे शिथिलता आ जाती है। उस मे इन तमाम तत्त्वों और उपकरणों का ऐसा सन्तुलित योग होना चाहिए, जो नाटक को सुगठित रूप प्रदान कर सके। आज के नाटक मे इन तत्त्वों का काफ़ी सन्तुलित योग है, इसीलिए वह पहले की अपेक्षा आज विकसित रूप मे है। किन्तु सम्भावनाएँ अभी और है और सदा रहेंगी। हिन्दी नाटक का पिछला इतिहास इन तत्त्वों मे सन्तुलन और समुचित योग होने के क्रमिक प्रयत्नों की कहानी है।

इस इतिहास का पहला चरण था पद्य मे नाटकों की रचना--पूरा का पूरा नाटक तब पद्यबद्ध होता था। यद्यपि भारत के प्राचीन संस्कृत नाटकों मे कोई भी नाटक पूरा का पूरा पद्य मे नहीं है, जो पद्य मे है, उसमे भी पद्य की अपेक्षा गद्य ही अधिक है, किन्तु शायद उन नाटको की परम्परा उस समय तक क्षीण हो गयी थी। आधुनिक नाटक का पहला रूप नवाब वाजिद अली के दरबारी कवि अमानत का 'इन्द्र सभा' है, जो पद्यबद्ध है। रंगमंच और अभिनय के लोक-रूपों मे इस प्रकार के पद्यबद्ध नाटकों को खेलने की परम्परा अब भी शेष है, जैसे नौटंकी और रास।

दूसरा चरण वह है, जब व्यावसायिक रंगमंचों की शुरुआत हुई। तब भी ऐसी पद्य-नाटिकाएँ खेली जाती थीं, किन्तु धीरे-धीरे उनमे पद्य की मात्रा कम होने लगी थी। पारसी-थियेटर के व्यावसायिक रंगमंच पर पहले उर्दू के 'लैला-मजनू', 'गुलबकावली' जैसे नाटक खेले जाते थे, जिनका गद्य अनुप्रास-प्रधान और लच्छेदार होता था। इन नाटकों मे अभिनेता प्रायः मुसलमान होते थे, जो हिन्दू ऋषि-मुनियों का भी पार्ट बड़ी खूबी से अदा करते थे। जब इन व्यावसायिक रंगमंचों की

लोकप्रियता हिन्दू, मुसलमान सभी मे बढ़ी तो इन पर 'राजा-हरिश्चन्द्र', 'सीता-स्वयम्बर' आदि नाटक खेले जाने लगे, किन्तु उन सब की शैली एक-सी ही थी — वही अनुप्रास-प्रधान, तुकान्त भाषा और बीच-बीच में शेर। उस समय के संवादों को सुन कर आज ऐसा लगे कि स्कूल के लड़के बैतबाज़ी (अन्ताक्षरी प्रतियोगिता) कर रहे हैं। ये दोष राधेश्याम कथावाचक के नाटकों मे भी विद्यमान है, यद्यपि उनकी भाषा मे पहले से काफी सुधार हुआ। साथ ही इन नाटकों मे मनोरंजन का विशेष ध्यान रखा जाता था। दो-चार नाच-गाने ज़रूर होते थे। (जैसे कि आजकल के फिल्मों मे प्रायः रहते है) और प्रत्येक नाटक मे कॉमिक ज़रूर होता था। यह बात शायद संस्कृत के नाटकों से ग्रहण की गयी थी, जिनमे प्रायः प्रमुख नायक के साथ एक विदूषक भी विद्यमान रहता था। ऐसे नाटककारों मे तालिब, हश्र, शैदा और राधेश्याम कथावाचक के नाम उल्लेखनीय है। इन्हें केवल रंगमंचीय नाटककार कहा जा सकता है। इनके नाटकों के अभिनय का एक घिसा-पिटा तरीका बन गया था। वह स्वाभाविक न हो कर अभिनेताओं मे आवश्यकता से अधिक 'स्टेज कान्शसनेस' (मच सतर्कता) का परिचायक था। सभी के संवाद कहने का ढंग एक-सा नाटकीय था। कार्य, स्थान और समय की एकता का बिलकुल ध्यान नही रखा जाता था।

दूसरी ओर भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने हिन्दी भाषा मे साहित्यिक नाटकों का जो प्रारम्भ किया था, वह अपने विकास के पथ पर आगे बढ़ रहा था। भारतेन्दु के नाटकों मे लम्बे स्वगत भाषण और पद्य की अधिकता है। सकलन-त्रय का भी कोई ध्यान नहीं है। किन्तु भारतेन्दु के नाटकों मे एक नयी सामाजिक चेतना और राष्ट्रीय जागरण की झलक है। उनमे सुधार की भावना है, मनोरंजन का स्वर प्रमुख नहीं है। उन्होंने अपने नाटकों मे सस्ते नाच-गानों को नही आने दिया।

साथ ही उनके नाटक-रूपों मे आधुनिक एकांकी और प्रहसन के प्रारम्भिक रूप भी मिलते हैं। भारतेन्दु ने उथले और सस्ते मनोरंजन-प्रधान नाटकों के इस व्यावसायिक रूप के विषय मे लिखा है :

> "काशी मे पारसी नाटक वालों ने नाचघर मे जब शकुन्तला नाटक खेला और उसमे धीरोदात्त नायक दुष्यन्त खेमटे वालियो की तरह कमर पर हाथ रख कर मटक-मटक कर नाचने और 'पतरी कमर बल खाय' गाने लगा तो डाक्टर थीबो, बाबू प्रमदा दास मित्र प्रभृति विद्वान यह कह कर उठ आये कि अब देखा नहीं जाता, वे लोग कालिदास के गले पर छुरी फेर रहे हैं।"

इस प्रकार भारतेन्दु के युग मे ही नाटकों के इस सस्तेपन से भरे असाहित्यिक रूप के विरोध मे साहित्यकारों की चेतना सजग हो गयी थी। दूसरी ओर इस व्यावसायिक रंगमंच का ह्रास होने लगा था, क्योंकि लोक-मनोरंजन के लिए फिलम ने स्थान बना लिया था। इसलिए रंगमंच पर व्यावसायिक नट-प्रधान नाटकीयता के प्रभाव की वजह से साहित्यिक नाटककारों के आने की गुंजायिश कम हो गयी और रंगमंच के बाहर साहित्यिक नाटकों और नाटककारों का युग प्रारम्भ हुआ। प्रसाद-युग से पूर्व हिन्दी मे बंगला और अंग्रेजी के नाटकों का अनुवाद प्रारम्भ हो गया था और नयी राष्ट्रीय चेतना तेजी से बढ़ रही थी। ऐसी परिस्थितियो मे ही प्रसाद का उदय हुआ। जो देशभक्ति का स्वर भारतेन्दु ने साहित्य मे पैदा किया था, उसे प्रसाद ने अपने नाटकों मे उदात्त और सांस्कृतिक रूप प्रदान किया। इन नाटकों की कथावस्तु ऐतिहासिक और भाषा संस्कृतनिष्ठ और कवित्व-पूर्ण है। वह पात्रों की भाषा न लग कर सब जगह कवि प्रसाद की भाषा मालूम होती है। इनमे पद्यों की उतनी भरमार नहीं, फिर भी

पद-पद पर गीत रखने का मोह प्रसाद को भी था। रंग-संकेत और दृश्य-विधान में रंगमंच की कला की अनुभवहीनता प्रकट होती है। यह भी हो सकता है, कि व्यावसायिक रंगमंच के भोंडेपन की प्रतिक्रिया में प्रसाद को रंगमंच की कला के प्रति ही विरक्ति हो गयी हो। संकलन-त्रय का उनके नाटकों में कहीं ध्यान नहीं रखा गया।

प्रसादोत्तर काल में नाटकों का नया युग शुरू हुआ और इसमें उपरोक्त तमाम कमियों का परिमार्जन करने का प्रयत्न किया गया। रंगमंच को कलात्मक ढंग पर संगठित करने के ऐमेचर प्रयत्न किये गये और दूसरी ओर बोलते फिल्मों के कारण दर्शकों में कम समय में ही अधिक सुगठित नाटक देखने की अभिरुचि जाग्रत हुई। और आज रंगमंच का विकास पृथ्वी थियेटर की मंज़िल पर आ कर आगे के स्वप्न ले रहा है।

राजनीतिक संघर्ष ने नाटकों के वस्तु-तत्त्व में विविधता और वर्त्तमान जीवन की जागरूकता को स्थान दिया। अब नाटक केवल उच्चवर्ग के लिए नहीं, वरन् सर्वसाधारण के लिए लिखे जाने लगे। इतिहास की गुफा से निकल कर नाटक ने वर्त्तमान जीवन से नाता जोड़ा और उसमें यथार्थ जीवन की झांकी प्रस्तुत की जाने लगी।

ध्वनि और विद्युत-यन्त्रों की सहायता से रंगमंच पर दृश्यों की सेटिंग को यथार्थ बनाने का कलात्मक प्रयत्न शुरू हुआ। फिर आज के हिन्दी नाटककार मूलतः साहित्यिक हैं और उनके सम्पर्क व्यापक हैं। उनकी कलात्मक चेतना सामाजिक और राजनीतिक जागरण के साथ-साथ विकासमान हो कर विश्व-साहित्य की समस्याओं की ओर उन्मुख हो रही है।

हिन्दी-नाटक के इस नव-जागरण मे नये युग के नाटककारों का महत्त्वपूर्ण योग है। और उनमे अश्क का स्थान विशेष है।

'अलग-अलग रास्ते' अश्क का नया नाटक है। और यह नाटक आधुनिक शैली के नाटकों का सफल उदाहरण ही नहीं, बल्कि हिन्दी-नाटक के विकास की एक महत्त्वपूर्ण मंज़िल भी है। पिछले पृष्ठों मे हिन्दी-नाटक के विकास की जो पृष्ठ-भूमि दी गयी है, उसे दृष्टि मे रखते हुए यदि इस नाटक को पढ़ा या खेला जाय तो यह हिन्दी मे रंगमंच, वस्तु और रूप-विधान के विकास का एक सीमाचिन्ह साबित होगा।

'अश्क' ने पहले एक नाटक 'आदि मार्ग' के नाम से लिखा था। 'अलग-अलग रास्ते' उसका ही परिवर्तित रूप है। 'अश्क' नाटक को बार-बार मांजा-सँवारा करते हैं और इससे उनकी कला मे सदा नया निखार आता है। 'आदि-मार्ग' को 'अलग-अलग रास्ते' बनाने मे भी उनकी इसी प्रवृत्ति ने काम किया है।

'अलग-अलग रास्ते' पढ़ कर इतिहास की एक पुरानी घटना याद आती है।

एक बार नेपोलियन ने मादाम कण्डोरसेट से कहा—"I do not like women to meddle with politics"*

मादाम ने उत्तर दिया—"You are right General, but in a country where it is a custom to cut off the heads of women, it is natural that they should wish to know the reason why?"†

---

*अर्थात्, मै नहीं चाहता कि महिलाए राजनीति मे दस्तन्दाजी करे।

† आप ठीक कहते है, सेनापति, किन्तु जिस देश मे स्त्रियों के सिर

वर्तमान समाज के पारिवारिक जीवन में हर पुरुष, चाहे वह पति हो या पिता, स्त्री के प्रति अपने को नेपोलियन से कम नहीं समझता। जिस व्यवस्था में स्त्री सामाजिक व्यक्ति नहीं बन पाती, केवल परम्परागत पुरुष-निर्मित संस्कारों और आदर्शों के लिए, पुरुष की मात्र आदेश-पालिका ही बनी रहती है, वहाँ यदि पुरुष भी घर के मैदान में अपने को नेपोलियन समझे तो हास्यास्पद होते हुए भी आश्चर्यजनक नहीं है। किन्तु उस मादाम की तरह आज की जाग्रत नारी अपना सिर काटने वालों से केवल जवाब-ही तलब नहीं करती, बल्कि सिर काटने वाली तलवार को भी तोड़ने के प्रयत्न में संघर्ष-रत है।

'अलग-अलग रास्ते' में नारी-जीवन के नव-जागरण का यथार्थ रूप और उसके पुरातन संस्कार दोनों को एक-साथ प्रस्तुत किया गया है। नारी, चाहे पत्नी हो या पुत्री, उसे अभी पुरुष के समान सामाजिक प्रतिष्ठा नहीं मिली है और उसका आत्म-संघर्ष ही यह है, कि पारिवारिक-मिथ्या-प्रतिष्ठा को वह सामाजिक-प्रतिष्ठा से कैसे बदले। पुराने संस्कार उसे पैर पकड़ कर पीछे घसीटते हैं और नयी सामाजिक चेतना उसे आगे बढ़ने को आकर्षित करती है। इस द्वन्द्व में आज उसका जीवन बीत रहा है। उसका यह द्वन्द्व पुरुष-सत्ता के प्रति उसके सामाजिक स्वाभिमान के संघर्ष के रूप में बदल जाता है। यदि वह स्वाभिमानी सिर को अपने सामाजिक जीवन के धड़ पर प्रतिष्ठित रखना चाहती है, तो उसे घर के नेपोलियनों की तलवार तोड़नी पड़ेगी, इस नाटक का मूल स्वर यही है।

काटने का रिवाज हो, वहां यदि नारियां इसका कारण जानना चाहें तो स्वाभाविक है।

पं० ताराचन्द की तीन सन्तानें हैं। राज और रानी—दो पुत्रियाँ और पूरन एक पुत्र! राज और रानी दोनों की शादी हो गयी, किन्तु राज का प्रोफेसर पति एक दूसरी स्त्री से प्रेम करता था, इसलिए राज को छोड़ कर उसने उससे शादी कर ली और रानी का वकील पति ताराचन्द की कोठी और कार दहेज में चाहता था, जिनके न मिलने पर उसने रानी की उपेक्षा की। फलतः दोनों ही अपने पिता के घर हैं। पूरन यथार्थवादी विचारों का जागरूक युवक है। उसका दृष्टिकोण अपने पिता से बिलकुल भिन्न है। पं० ताराचन्द पुराने संस्कारों के कट्टर हिमायती हैं। वे पक्के 'नेपोलियन' हैं। दोनों पुत्रियों की शादी वे अपनी धारणाओं के अनुसार तय कर देते हैं, किन्तु उसका जो फल निकलता है, वह उनके लिए भी एक समस्या बन जाता है। फिर भी वे 'नेपोलियन' बने रहना चाहते हैं।

त्रिलोक, पंडित उदयशंकर और पं० ताराचन्द—तीनों एक संस्कार के प्रतीक हैं। त्रिलोक को ताराचन्द का नवीन संस्करण कहा जा सकता है। अन्तर केवल इतना है, कि एक पति है तो दूसरा पिता, किन्तु दोनों ही रानी के लिए समान हैं।

राज के पति की समस्या सामाजिक भी है और मनोवैज्ञानिक भी! वह राज से प्रेम नहीं कर पाता, इसके लिए वह क्या करे? किन्तु दूसरे के प्रति प्रेम करते हुए भी राज-जैसी पुराने संस्कारों की भोली लड़की से शादी करने को तैयार हो जाना उसकी सामाजिक दायित्वहीनता का परिचायक है।

'अलग-अलग रास्ते' को हम एक ऐसा स्वस्थ समस्या मूलक नाटक कह सकते है, जिसमे वर्तमान सामाजिक जीवन की एक समस्या को यथार्थवादी प्रतीकात्मक शैली मे प्रस्तुत किया गया है। समस्या है विवाह और प्रेम तथा नारी की सामाजिक-प्रतिष्ठा के निर्माण

की । पात्र संस्कारों और नयी चेतना के प्रतीक ही नहीं, बल्कि वे स्वयं मे एक वर्ग है। जैसे पं० ताराचन्द तथा पं० उदय शंकर ऐसे प्रतीक पात्र है, जो समाज के एक वर्ग के अवशिष्ट सामन्ती संस्कारों का प्रतिनिधित्व करते है और राज है—नारी के उन पुराने संस्कारों की प्रतीक, जो शील और मर्यादा के नाम पर, प्रेम न करने वाले पति की भी पूजा के लिए, सब कुछ सहते हुए, पतिव्रता बनी रहना चाहती है, जो बन्धनों को शृंगार और अत्याचारों को सहना एक साधना समझती है ! और रानी है उस नारी का प्रतीक, जो आज की बनती हुई नारी है, जो नारी जीवन की सामाजिक सम्भावना है, जो आज विद्रोह के पथ पर चलने को तैयार हो रही है । पूरन सारे पुरातन सड़े-गले समाज की विकृतियों को झकझोरने वाला क्रान्ति के नये स्वर का उद्‌घोषक है, जो वर्तमान जीवन के सामाजिक असन्तोष का प्रतीक है ।

इस परिवार मे पूरन से रानी ही सर्वाधिक प्रभावित है और वही लालची और लोभी पति के साथ, पिता के मजबूर करने पर भी, जाने से इनकार कर देती है ।

सभी के स्वर अलग है। सभी अपने-अपने चरित्र की रेखाओं को स्पष्ट करते हुए अपना स्वाभाविक प्रतिनिधित्व करते है।

पं० ताराचन्द रानी से कहते है:—

"तू नही जानती, अपने पति के विरुद्ध सपने मे भी बुरी बात सोचना कितना बड़ा पाप है ? तू नहीं जानती, तूने एक ब्राह्मण के घर मे जन्म लिया है, तू किसी चांडाल के घर उत्पन्न नहीं हुई ।"

रानी ताराचन्द को उत्तर देती है :

"आप के धर्म की बातें मैंने बहुत सुन ली, पिता जी, आपका धर्म भी पुरुषों का धर्म है।"

और पूरन कहता है :

"इन पिताओं और पतियों मे कोई अन्तर नहीं !"

और रानी वह स्वाभिमान और सामाजिक व्यक्तित्व पाने के लिए पति को भी छोड़ती है और पिता को भी। पति द्वारा लोभवश चापलूसी करने पर वह कहती है :

> "आप क्या मुझे मूर्ख समझते है? क्या आपका खयाल है कि उस अपमान, निरादर और घोर मानसिक यन्त्रणा के बाद, जो आपने दो बरस मुझे दी, मै इतनी भोली हूँ, कि आपकी इन झूठी मीठी बातों के भुलावे मे आ जाऊँगी?...... आप जाइए...पिता जी से मकान लीजिए, मोटर लीजिए ! मुझे उस मकान-मोटर की कोई जरूरत नहीं।"

इसके विपरीत राज अपने पति मदन के दूसरी शादी कर लेने पर भी अपने 'देवता तुल्य ससुर' के यहाँ चलने को तत्पर है। वह कहती है—

"यह तो मेरी किस्मत है, भैया !"

नारी के दो रूप—एक पुराने संस्कारों का और दूसरा नयी सामाजिक चेतना का—राज और रानी मे पूरी तरह उभर उठे है। अन्त मे जहाँ नाटक का क्लाइमेक्स है, रानी और पूरन पुरातन संस्कार के सत्ताधारी पिता के घर को छोड़ कर चल देते है और राज उसे पूज्य समझ कर अपना लेती है। यहाँ पर रानी राज से कहती है—

> "आज से हमारे रास्ते अलग होंगे, राजो ! मै प्रार्थना करूँगी कि तुम सुखी रहो।"

पूरन कहता है—

"स्वाभिमानियों के लिए आदिकाल से यह मार्ग खुला है, राजो !"

किन्तु राज के पुराने संस्कार बोलते हैं—
"मेरा मार्ग भी तो आदिम है, भैया।"

इस तरह इन प्रतीक-चरित्रों मे वर्तमान सामाजिक जीवन की एक मूल और यथार्थ समस्या को बड़े कलात्मक ढंग से उद्घाटित किया गया है और साथ ही सम्भावना की ओर संकेत करता हुआ एक समाधान भी पेश किया गया है।

बाकी पात्र भी मध्यवर्गीय समाज के अन्तर्विरोध-पूर्ण रूढ़-संस्कारों के ही प्रतीक है और समस्या को उजागर करने मे किसी-न-किसी तरह अपने स्वाभाविक रूप मे सहायक होते है। शिवराम, सरदारी लाल बिजली पहलवान—सब वर्तमान समाज के जीवित, जाग्रत अंग है।

कला की दृष्टि से यह नाटक अश्क के विकास का एक सीमाचिन्ह प्रस्तुत करता है। इसमे समय, स्थान और कार्य-सम्पादन की एकता का कलात्मक ढंग से निर्वाह किया गया है। सब से बड़ी बात यह है, कि 'अलग-अलग रास्ते' मंच पर बिना किसी अतिरंजना के समाज का ऐसा चित्र साकार कर सकता है कि नाटक के रस का साधारणीकरण सहज ही सम्भव है। एक ही कमरे की सेटिंग मे पूरा नाटक समाप्त हो जाता है। तीनों अंकों का दृश्य-स्थान एक ही है और कार्य-व्यापार आरम्भ से फलागम तक ऐसे प्रवाह से बढ़ता है, कि लगता है, जितनी देर नाटक के खेलने मे लगती है, उतनी ही देर की कहानी है।

दृश्य-संकेत मे लेखक ने कमरे के वातावरण को प्रत्यक्ष करने का सफल प्रयत्न किया है। कमरे में अवतारों के चित्र पुराने संस्कारों

के और मार्क्स और गांधी के चित्र नयी चेतना के प्रतीक हैं। साथ ही ये चित्र आज के संक्रान्ति-कालीन परिवारों के विचार-वैविध्य को भी प्रकट करते हैं।

'अलग-अलग रास्ते' दुखान्तकी ही कहा जा सकता है, किन्तु यह निराशावादी नहीं है, इसलिए पूरी तरह यह दुखान्तकी नहीं है। बल्कि कह सकते हैं, कि दुखान्तकी का यह आधुनिकतम रूप है। पूरन और रानी आशावादी हैं और राज निराशावादी, किन्तु दोनों के अन्तर्मन में एक जैसी विकल वेदना है।

इस नाटक मे हास्य की उतनी तरलता नही है, जितनी अश्क के दूसरे नाटकों मे मिलती है। इसमे कहीं-कहीं पर नाटकीय परिस्थिति से हास्य जागता है, वह भी व्यंग्य मिश्रित या व्यंग्य के कारण। नाटक का दूसरा अंक तीखे व्यंग्य का सुन्दर नमूना है। पूरन के सम्वादों मे व्यंग्य है और उस व्यंग्य मे पूरे-के-पूरे सड़े-गले समाज पर घन की सी चोट है।

लगता है, कि अश्क के नाटकों की थीम ज्यादातर विवाह और प्रेम की समस्या पर आधारित है और इस नाटक मे भी उसकी आवृत्ति की गयी है। किन्तु ऐसे सभी नाटकों में अश्क का दृष्टिकोण विकसित होता गया है, जिसका उद्देश्य एक समस्या के माध्यम से समाज के सभी अंगों पर प्रकाश डालना है। अपने इस नाटक मे अश्क ने समस्या को एक निश्चित समाधान की दिशा बता कर अपने उस प्रगतिशील दृष्टिकोण का परिचय दिया है, जो आज इतिहास का रहनुमा है।

प्रस्तुत लेख अश्क के नाटक-साहित्य पर लिखे गये वृहद ग्रन्थ 'नाटककार अश्क' से संकलित है।
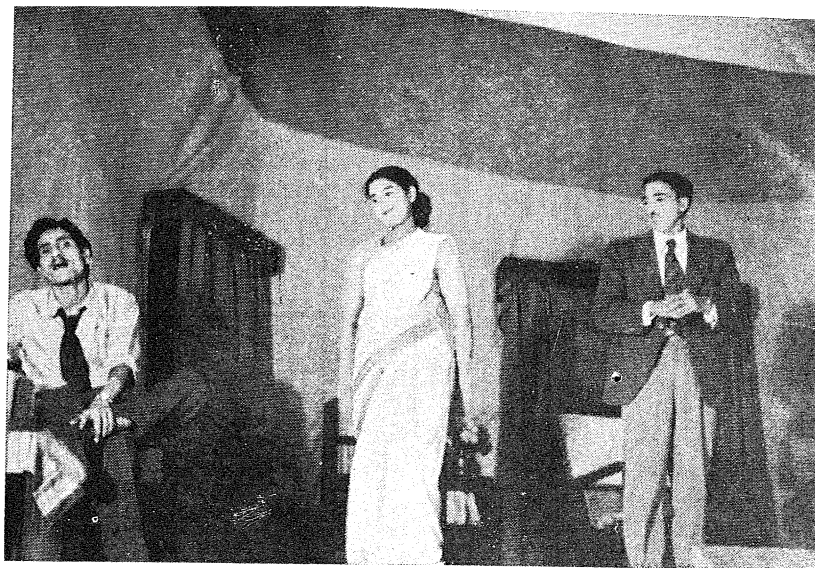
१९५३ में 'नीटा' प्रयाग द्वारा 'अलग अलग रास्ते' का अभिनय !

अलग-अलग रास्ते

अलग-अलग रास्ते पहली बार १९ दिसम्बर १९५२ को नीटा (नार्थ इंडियन थियेट्रीकल एसोसीएशन) द्वारा निम्नलिखित अभिनेताओं के साथ पैलेस थियटर इलाहाबाद मे अभिनीत हुआ ।

पंडित ताराचन्द	विजय बोस
शिवराम	पी० सी० बेनर्जी
रानी	ललिता चटर्जी
पूरन	राज जोशी
सरदारीलाल	एस० एस० पाण्डेय (राजू)
राज	बिन्दु अग्रवाल
सन्तू	टी० सी० गौड़
बृजनाथ	के० बी० लाल
त्रिलोक	कौशल बिहारीलाल
बनवारी	सतीश जौहरी
प० उदयशंकर	मनोज शर्मा
वृन्दाबन	अब्बास
बिजली पहलवान	वली उल्लाह
श्रीधर	विजय प्रताप

इस नाटक का निर्देशन श्री भारतभूषण अग्रवाल तथा श्री विजय बोस तथा संयोजन श्री सुमित्रानन्दन पन्त ने किया ।

नोटः—नाटक के अभिनय इत्यादि के सम्बन्ध में लेखक के मनोरंजक संस्मरण परिशिष्ट मे देखिए ।

पात्र

(जिस क्रम से कि वे नाटक में आते हैं)

ताराचन्द

शिवराम

रानी

पूरन

सरदारीलाल

राज

सन्तू

बृजनाथ

त्रिलोक

बनवारी

पण्डित उदय शंकर

वृन्दाबन

बिजली पहलवान और उसके साथी

श्रीधर

स्थान

(पंडित ताराचन्द का ड्राइंग रूम)

समय

पहला अंक —इतवार को सुबह

दूसरा अंक —इतवार को दुपहर

तीसरा अंक —इतवार को शाम

इस नाटक का कापी राइट लेखक के पास सुरक्षित है। खेलने वालों से प्रार्थना है कि वे बिना लेखक को पेशगी रायल्टी दिये और उसकी लिखित अनुमति पाये, इसे खेलने का प्रयास न करे।

इस सम्बन्ध में सब पत्रव्यवहार प्रकाशक के पते से किया जा सकता है।

पहला अंक

[पर्दा राय साहब पंडित ताराचन्द की बैठक मे खुलता है । यह बैठक नये और पुराने का अद्भुत मिश्रण उपस्थित करती है, क्योंकि इसमे कौच भी लगे है, तिपाइयाँ भी रखी है और एक तख्त पर गाव-तकिया भी लगा है ।

*बायीं दीवार मे एक बड़ी खिड़की है जो सामने की दीवार के कोने तक चली गयी है । तख्त इसी के बराबर, कुछ ऐसे बिछा है कि उस पर लेटने वाले का चेहरा दर्शकों को दिखायी दे जाय । खिड़की पर पर्दा लटक रहा है, शायद पूरा नही खींचा गया, क्योंकि खिड़की का आधा भाग दिखायी दे रहा है, जिसके शीशों से बाहर बागीचे के पेड़-पौधे दिखायी देते है ।

†दायी दीवार मे भी एक वैसी ही खिड़की है, जिसके अध-

---

*†अभिनेताओ की बायी-दायी

खुले पर्दे से चबूतरा और उसके परे बागीचा दिखायी देता है। खिड़की के इधर को एक दरवाज़ा है जो बाहर चबूतरे पर खुलता है। बाग से होकर बैठक मे आने का यही दरवाजा है।

सामने दीवार के साथ कौच का सेट, तख्त से आंगन के दरवाज़े तक, इस ढंग से लगा है कि बायीं ओर के कौच पर बैठा हुआ व्यक्ति तख्त पर बैठे हुए आदमी से बड़ी आसानी से बातचीत कर सकता है।

दीवारों पर अवतारों के चित्र भी लगे है और महात्मा गांधी तथा पंडित जवाहरलाल के भी, लेकिन उनमे मार्क्स और लेनिन के चित्र न जाने किसने लगा दिये है? शायद पंडित जी के लड़के पूरन ने लगाये है और पंडित जी से उसने यह कह दिया है कि ये भी अवतारों ही की तस्वीरें है।

सुबह का समय है। खिड़की के शीशों से हलकी-हलकी धूप कमरे में आ रही है। पर्दा उठने पर पंडित ताराचन्द दर्शकों की ओर पीठ किये तख्त के पीछे खड़े खिड़की की रोशनी में समाचार पत्र पढ़ रहे है। बैक-ग्राऊँड में रानी गाना सीख रही है। और सुबह की रागिनी में उस मीठे गाने के रसीले बोल कुछ पल को रंगमंच पर छाये रहते है। तभी शिवराम दायीं ओर से प्रवेश करते है। ताराचन्द को समाचार-पत्र पढ़ते देखते है, फिर टोपी और छड़ी मेज़ पर रखते हैं और नौकर को आवाज़ देते है:]

शिवराम : सन्तू, जरा पानी का एक गिलास लाना ।

(अन्दर गाना थम जाता है । पंडित ताराचन्द मुड़ते हैं ।)

ताराचन्द . आओ शिवराम बैठो । (**आकर तख्त पर बैठते हुए रानी को आवाज़ देते है**) रानी बेटा, एक गिलास पानी भिजवाओ......

(हुक्के की नय थाम कर एक लम्बा कश लेते है ।)

रानी : (**आंगन से**) ला रही हूँ पिता जी !

(पं० ताराचन्द के निकट ही कौच पर बैठते हुए)

शिवराम : अर भई कोई ऐसी जल्दी नही । इतनी दूर से पैदल चला आया, इसलिए कुछ प्यास सी लग रही है, पर ऐसी भी क्या मुसीबत है कि......

[रानी आंगन के दरवाज़े से पानी लिए हुए प्रवेश करती है ।]

ताराचन्द : तुम लायी हो, वह सन्तू, शिब्बू कहाँ मर गये ?

रानी : जी सन्तू तरकारी लेने गया है और शिब्बू घर चला गया है । उसकी बीवी सख्त बीमार है ।

ताराचन्द : किसने छुट्टी दी उसे ।

रानी : पूरन भय्या ने उसे भेज दिया ।

ताराचन्द : यह पूरन जो न करे थोडा है ।

(रानी बढ़ कर गिलास शिवराम को देती है)

रानी : लीजिए चाचा जी !

शिवराम . (**गिलास लेते हुए**) जीती रहो बेटा !

[दो एक घूंट पी कर गिलास तिपाई पर रखते हैं । रानी गिलास उठाने लगती है ।]

शिवराम : नही, नही, अभी गिलास ले जाने की जरूरत नही। मैं अभी और पीऊँगा। धीरे-धीरे पीने की आदत है मेरी। **(रानी के कंधे को थपथपाते हुए हँसते है)** जल्दी का काम शैतान का होता है और शैतान के कामो को मैं पसन्द नही करता।

(रानी गिलास फिर तिपाई पर रखती हुई मुस्कराती है।)

ताराचन्द : **(हुक्के की नय छोड़ कर)** भगवान तुम्हारा भला करे! यही हम लोग जवानो को मात दे देते है। 'सहज पके सो मीठा हो!' मे हमारा विश्वास है, पर आज के नौजवानो मे उतना सबर नही, कच्चा-खट्टा उन्हे पसन्द, पर पकने की बाट वे नही देख सकते।

(फिर हुक्का गुड़गुड़ाते है।)

शिवराम : हम तो भाई बरमे है बरमे! जहाँ बैठ जाते है आर-पार छेद कर देते है। आज के नौजवान कील ले कर ठोकना शुरू करेंगे और जब लकड़ी फट जायगी तो मुह बा देंगे!

ताराचन्द : **(नय छोड़ कर अपने आप)** बरमे! **(हँसते है।)** भगवान तुम्हारा भला करे, क्या बात कही है तुमने!

(रानी हँसती है।)

— : **(कद्रे चिढ़ कर)** तुम गिलास के लिए क्यो खड़ी हो? सन्तू ले जायगा!

(रानी जाती है। ताराचन्द हुक्का गुड़गुड़ाते है।)

शिवराम : क्यों भई, रानी के बारे में क्या फैसला किया तुमने? बेचारी आधी भी नही रही।

ताराचन्द : रानो ही के दुख की दवा कर रहा हूँ, शिवराम! अपनी

ओर से मैं इस बात का पूरा ध्यान रखता हूँ, कि उसे किसी तरह का कष्ट न हो। (**हुक्का गुड़गुड़ाते हैं।**) उसने दो बार कालेज मे दाखिल होना चाहा और हालाँकि मैं लडकियो की शिक्षा को उतना पसन्द नही करता, लेकिन पूरन के जोर देने पर और इस बात का खयाल करके कि रानी को अपना दुख हर समय खलेगा, मैंने इनकार नही किया। फिर सूरदास हरिराम को उसे गाना सिखाने को भी लगा दिया। (**फिर हुक्के का लम्बा कश लेकर कद्रे भेद-भरे स्वर मे**) यही नही, मैंने त्रिलोक की तरफ से भी उम्मीद नही छोड़ी। वृन्दावन को उसके पीछे लगा रखा है और वह उसे राह पर लाने की पूरी कोशिश कर रहा है। (**फिर हुक्का गुड़गुड़ाते और खाँसते हैं।**) मैं जानता हूँ, अपनी सारी शिक्षा-दीक्षा, कला-कौशल और अपने सारे गुणो के रहते भी रानी विरह के इस लम्बे दुख को न सह सकेगी।

(**हुक्के का लम्बा कश लेते हैं।**)

शिवराम : धन चोरी हो जाय, खो जाय, ताराचन्द, आदमी सन्तोष कर लेता है, पर पास होते हुए भी, अपना होते हुए भी, उसे हाथ लगाने की आज्ञा न हो, इस बात से जो कष्ट होता है, उसे मन ही जानता है।

ताराचन्द : (**नय छोड़ कर**) भगवान तुम्हारा भला करे! (**फिर हुक्के का लम्बा कश लेते हैं।**) इसलिए मैं इस जतन मे हूँ कि त्रिलोक स्वय आ कर उसे ले जाय और मान से रखे।

शिवराम : क्या कहता है त्रिलोक ?

ताराचन्द : अभी तो कोई सुन-गुन ही नही देता। बात असल मे कुछ बिगड गयी है शिवराम, उसे बनाने के लिए समझदारी और समय दोनो की जरूरत है। बरमा ही चाहिए, जो धीरे-धीरे, लेकिन स्थिर गति से, उसके दिमाग मे छेद करके उसे यह समझा दे कि जो तरीका उन लोगो ने अपनाया है, वह ठीक नही। मै रानो को घर बैठाना नही चाहता, पर उसे और उसके साथ अपने वश को चौबीसों घडी अपमानित होते भी नही देख सकता।

शिवराम : अपमानित, लेकिन......

ताराचन्द : बात यह है शिवराम, कि इस शादी से त्रिलोक को, त्रिलोक ही को नही, राय बहादुर पडित कुजबिहारी को भी बडी आशाएँ थी।

शिवराम : आशाएँ ?

ताराचन्द : उन्हे आशा थी कि मै दहेज़ मे अपना कचहरी रोड वाला मकान और मोटर जरूर दूगा। लेकिन मकान छोड जब उन्हे मोटर भी न मिली.... .

[पूरन बाहर चबूतरे पर दिखायी देता है। क्षण भर के लिए खिड़की मे से भीतर झाँकता है, फिर ड्राइंग रूम की ओर आता है।]

शिवराम : लेकिन उन्हे मकान और मोटर की क्या जरूरत है ? उनके अपना मकान है, और मोटर भी है।

ताराचन्द : अरे भई, जितना बड़ा पेट उतनी बडी भूख ! और फिर त्रिलोक के अलावा राय बहादुर के पाँच और बेटे

भी तो है । बाँटने पर शायद किसी मकान की बैठक और मोटर का कोई पुर्जा ही उसके हाथ लगे ।

[**पूरन कमरे में आता है, लेकिन दोनों को बातों म निमग्न देख पल भर के लिए चौखट में खड़ा सुनता है ।**]

शिवराम : क्या कहते हो, उनके तो इतने मकान हैं !

ताराचन्द : सब गिरवी रखे हुए है । मुझे तो पता ही न चला, नहीं मैं कभी रानी की शादी वहाँ न करता ।

पूरन : (**हँसता है**) इस बात का पता चल जाता तो कोई और बात पर्दे मे रह जाती । व्याह तो आज-कल अंधेरे म तीर मारने के बराबर है । निशाने पर लग गया तो ठीक, नही हाथ से निकला तीर तो वापस आता नही । जब दोनो पक्ष झूठ बोलने मे एक दूसरे से बाजी मारने की फिक्र मे हो तो सच का पता पाना मुश्किल है ।

ताराचन्द : (**हुक्का गुड़गुड़ाना छोड़ कर तीक्ष्ण-कटु-स्वर में**) कहाँ से आये हो, पूरन, आवारागर्दी करके ?

पूरन : आवारागर्दी में ठौर-ठिकाना कहाँ ? सभी जगह घूमता आया हूँ ।

ताराचन्द : तुम्हे कभी तमीज से बात करनी भी आयेगी ? (**शिवराम से**) और शिवराम, तुम कहते थे, बच्चों को जितना हो सके पढ़ाना चाहिए । ये महाशय एम० ए० है और सुनता हूँ, अपनी जमात मे अव्वल रहे थे । पूछो, क्या करते हैं ? (**मुंह बना कर**) आवारागर्दी !

पूरन : तो आखिर आप ही कहे, क्या करूँ ?

ताराचन्द : (**गरज कर**) मैं कहूँ ? मेरे कहने से क्या होता है ?

(**शिवराम से**) मै इसके लिए कितने मित्रो के सामने बुरा नही बना शिवराम ! रायसाहब **गनी**मत राय की सिफा-रिश से आल-इडिया रेडियो मे पी० ई० बनवा **दिया** (**नकल उतारते हुए**) "मुझे यह क्लर्की पसन्द नही !" बुरा सा मुह बना कर यह महाशय वहॉ त्यागपत्र दे आये । लाला गुलजारी लाल की मिन्नते कर के उनकी फर्म मे चीफ़ एजेट नियुक्त करा दिया, चार दिन बाद वहॉ से छोड आये । पूछा—क्यो ? उत्तर मिला, "दिन भर झूठ बोलना पडता है !" पूछे कोई कि सत्यवादी हरिश्चन्द्र के अवतार तो बस तुम्ही रह गये, बाकी सारी दुनिया तो झूठ बोलती है । ......सर सीताराम की मिल मे मैनेजर की नौकरी दिलायी, हफ्ते भर से ज्यादा वहॉ नही टिके । पूछा "क्यो ?" पता चला—मजदूरो पर अत्याचार इन से सहन नही होता । (**फिर पूरन से**) अब तुम्ही बताओ, तुम्हे और क्या करने को कहूँ ? सुबह कहॉ जाने को कहा था, कुछ याद है ?

पूरन : मै उनसे बात करना भी अपना अपमान समझता हूँ ।

ताराचन्द : लाट है न हिन्दुस्तान का तू (**मुंह चिढ़ाते हुए**) बात करना भी अपमान समझता हूँ । बहिन का सारा जीवन सकट मे है और भाई महाशय है कि उसके पति से बात तक करना अपमान समझते है ।

पूरन : मै जानता हूँ, उनके साथ बहिन का जीवन......

ताराचन्द · (**और भी गरज कर**) चुप रहो और अपनी यह फ़िला-सफी अपने पास रखो !

रानी : (**आँगन से**) पूरन भय्या, जरा इधर आना, यह ट्रंक जरा नीचे उतरवाना, सन्तू तो आया नही ।

पूरन : आया रानी !

(**चला जाता है ।**)

ताराचन्द : जरूरत से ज्यादा शिक्षा ने लडके का दिमाग खराब कर दिया है । मुझे डर है, कही यह अपने साथ रानी को भी न ले डूबे । स्त्री का स्थान उसके पति का घर है, शिवराम । माता-पिता के पास लडकी कै दिन तक रह सकती है ?

शिवराम : बडे-बडे राजा महाराजा लडकियो को अपने घर न बैठा सके ताराचन्द, फिर हम तुम किस खेत की मूली है ?

ताराचन्द . भगवान तुम्हारा भला करे ! (**हुक्के का कश लगा कर**) तुम्ही कहो, अगर रानी अपने घर न जायगी तो क्या उमर भर यहाँ बैठी रहेगी ? मै जो उसे शिक्षा दिला रहा हूँ, तो उसका कारण यह नही कि वह सारी उमर यहाँ बैठी रहे या कही पचास-साठ की नौकरी करे, बल्कि यह कि त्रिलोक के लिए यह बहाना करने का मौका न रहे कि उसकी बीवी अनपढ है !

शिवराम : भले घरों की बहू-बेटियाँ कही नौकरी करती है !

ताराचन्द : भगवान तुम्हारा भला करे ! यह कम्बख्त जो आज भाई बना फिरता है, कल यदि मेरी आँख बन्द हो जाय तो बात भी न पूछेगा । देखो शिवराम, इन लोगों के किये तो कुछ होगा नही । ये नादान छोकरे है, इन्हे इस

बात की समझ नही कि कौन सी बात करने की है और कौन सी नही। तुम्हे जो इतने सवेरे कष्ट दिया है तो इसलिए कि तुम स्वयं त्रिलोक से मिलो और उसे किसी न किसी तरह रानी को ले जाने पर राजी कर लो। त्रिलोक के पिता से किसी जमाने मे तुम्हारी खूब दोस्ती रही है। उस पर भी दबाव डालो। वे लोग मकान ही लेना चाहते है तो मै अपना कचहरी वाला मकान त्रिलोक और रानी के नाम कर दूगा। आखिर जमाई और बेटे मे क्या फर्क है? रानी अपने पर सुखी रहे, म और मकान बनवा लूगा!

शिवराम : रानी से भी उसे कुछ शिकायत है क्या? मैने सुना है ....

ताराचन्द : अब तो दसियो शिकायते है—वह पढ़ी-लिखी नही, सभ्य नही, सुन्दर नही, नम्र नही, मुहफट है, सास ससुर का आदर नही करती .....

शिवराम : तुमने रानी को समझाया नही?

ताराचन्द : अरे भाई, जब वह पिछले साल रोती हुई आयी थी तो मैने समझा-बुझा कर उसे वापस भेज दिया था, लेकिन सच पूछो तो जैसा मैने कहा, रानी का इसके अतिरिक्त कोई दोष नही कि वह त्रिलोक और उसके घर वालो की आशा के अनुसार दहेज़ मे एक मोटर और मकान नहीं ले गयी।

शिवराम : तुम्हें कैसे मालूम हुआ? हुई थी तुम्हारे सामने इस बात की चर्चा?

ताराचंद : (**हुक्का गुड़गुड़ा कर**) अरे यह तो बुझ गया। (**नौकर को आवाज़ देते हैं**) सन्तू, ओ सन्तू !

रानी . (**दरवाज़े मे झाँक कर**) क्या बात है पिता जी ?

ताराचन्द : यह चिलम बुझ गयी, उससे कहना, ज़रा भर कर दे जाय !

रानी : वह तो अभी आया नही पिता जी, मै आती हूँ ।

(**रानी आती है और चिलम ले जाती है ।**)

ताराचन्द : (**रानी से**) ज़रा तमाखू दबा के भरना । पूरन क्या कर रहा है ?

रानी : (**जाते-जाते**) बाहर चले गये है बागीचे मे !

(**चली जाती है ।**)

ताराचन्द : (**शिवराम से**) त्रिलोक ने मुझ से तो कभी कुछ नही कहा । मेरे सामने तो झिझकते-झिझकते उसने इन्ही बातो की चर्चा की थी, लेकिन रानी ने सुसराल में अपने शुरू के दिनो की बाबत जो कुछ बताया, उसी से मुझे पता चल गया कि असल मे दुखती रग कौन-सी है । शुरू-शुरू में त्रिलोक ने रानी को उसके पिता की कंजूसी के लिए कोसा और कहा कि उसे धोखा दिया गया है । उसे आशा दिलायी गयी थी कि एक मोटर और मकान दहेज़ मे दिया जायगा ।

शिवराम : हुई थी ऐसी बात ?

ताराचन्द : (**ज़ोर देकर**) कभी नहीं। मै और परमानन्द त्रिलोक को देखने गये थे; इस बात का ज़िक्र तक नही हुआ। उस वक्त तो न इतनी पढ़ी-लिखी की ज़रूरत थी, न

सुन्दर की। मेरे सामने त्रिलोक ने साफ़-साफ़ कहा कि मैं बहुत पढ़ी-लिखी लड़की पसन्द नही करता। बस, भले घर की ऐसी सरल और सुशील लड़की चाहिए जो मुझे घर का आराम दे सके। जब मैं शाम को कचहरी से थका-माँदा आऊँ तो मुझे लगे कि मैं घर आ गया हूँ। मुझे ऐसी पत्नी नहीं चाहिए, जो घर ही को कचहरी बनाये रखे—और मैंने उसे विश्वास दिलाया था कि वह रानी में यह सब खूबियाँ पायगा......अब परमानन्द ने उसे अपनी तरफ़ से कोई सब्ज़बाग़ दिखाये हो तो मुझे ख़बर नही।

(रानी चिलम लिये हुए आती है।)

रानी : यह लीजिए चिलम पिता जी, उपले की आग रख कर लायी हूँ।

ताराचन्द : (**हुक्का गुड़गुड़ा कर**) जीती रहो, बेटा! (**शिवराम से**) लो शिवराम, पियो!

[रानी चली जाती है और शिवराम बेपरवाही से हुक्के के दो कश लगा कर नय ताराचन्द की ओर कर देता है]

शिवराम : लेकिन तुम्हारी इच्छा के बिना परमानन्द ने ऐसा क्यो किया होगा?

ताराचन्द : कभी मेरा खयाल था, मोटर और मकान देने का, लेकिन भाई, मुझे राजी की भी तो शादी करनी थी। रानी को मकान देता तो राजी को भी देता और फिर जब त्रिलोक और उसके पिता ने कहा कि हमे दहेज की

बिलकुल परवाह नही, भगवान का दिया हमारे पास बहुत कुछ है, हमे तो बस सरल और सुशील लड़की चाहिए तो मै निश्चिन्त हो गया। फिर पूरन का भी खयाल था। लाख आवारा हो, फिर भी मेरा लड़का है।

शिवराम : हॉ-हॉ, पूरन के लिए कुछ भी न छोड़ना परले सिरे की बेइन्साफ़ी होती। पढा-लिखा बे-ऐब लड़का है, जिस दिन भी टिक कर बैठ गया, तुमसे दुगना कमा लेगा।

ताराचन्द : भगवान तुम्हारा भला करे (**चुपचाप हुक्का गुड़गुड़ाते हैं।**) मुझे क्या मालूम था कि त्रिलोक और उसके पिता ने जो कुछ कहा, वे सब ऊपर की बाते थी। उनकी ऑखे तो मोटर और मकान पर लगी थी। ज्यो ही रानी घर गयी, उसे सुनना पड़ा कि वह एक कजूस बाप की बेटी है। उसकी सास ने, उसके ससुर ने, उसकी जेठानियो और ननदों ने उसे दहेज़ की कमी के ताने दिये। त्रिलोक ने कई बार उन लडकियों की चर्चा की जिनके पिता उसे कही अधिक दहेज देने को तैयार थे, या जो ज्यादा पढी-लिखी, सभ्य सस्कृत......

(**कॉल-बेल बज उठती है।**)

— : (**अपनी बात जारी रखते हुए**) सुन्दर, सुशील या विनम्र थी।

(**कॉल-बेल फिर बज़ती है।**)

— : (**उच्च स्वर में**) अरे सन्तू, देख कौन है ? बैठाना

बाहर वरामदे मे । (**शिवराम से**) वह कुछ भी कहती या करती, उसे किसी न किसी लडकी या उसके रिश्तेदारो की बात सुननी पडती । उसे इतना तग किया गया कि वह यहाँ आ गयी । तब मैने उसे समझा-बुझा कर वापस भेज दिया । समझाया कि बेटी, पति जिस हालत मे रखे, उसमे रहना चाहिए और ससुराल के दोष गिनने के बदले गुण ढूढने चाहिए । और मै जानता हूँ, रानी ने अपनी ओर से किसी तरह की शिकायत का मौका नही आने दिया । मुझे क्या मालूम था कि ब्राह्मणो के भेस मे ये लोग भेडिये है ! (**क्षण भर हुक्का गुड़गुड़ाते है, फिर धीमे, भेद भरे स्वर मे**) लेकिन शिवराम, एक तरह यह अच्छा ही हुआ । मै मकान और मोटर दहेज मे दे देता तो इन सब बातो का पता कैसे चलता ? भेडियो की उस मॉद मे रानो का तो खून सूख जाता । तुम त्रिलोक को समझाना कि अगर वह रानी को ले कर अलग हो जाय तो मै मकान भी दे दूगा और मोटर भी । सीधे यह सब न कहना । अपनी ओर से समझाना कि शायद ताराचन्द ने इसीलिए मकान नही दिया कि साझे मे जायगा तो तुम्हारे हाथ कुछ न आयगा या कोई और बहाना कर देना । मकान मोटर की, मुझे चिन्ता नही, पर मै नही चाहता, रानी भेड़ियों की उस माँद मे रहे ।

शिवराम : मै सब समझता हूँ, मै बड़ी सफ़ाई से बात चलाऊँगा और भगवान ने चाहा तो रानी आदर और सम्मान से अपने घर अलग रहेगी ।

ताराचन्द : भगवान तुम्हारा भला करे......

पूरन : पिता जी, राय सरदारीलाल आये है।

ताराचन्द : (**घबरा कर उठते हुए**) तो उन्हे ले आये होते।

पूरन . जी उन्होने कहा, "मै यही बरामदे मे बैठा हूँ, धूप बडी प्यारी लग रही है।"

शिवराम . (**उठते हुए**) अच्छा भई, तो मै चला। त्रिलोक से आज ही मिलने की कोशिश करूँगा।

ताराचन्द : अरे भई, चलो, ज़रा धूप मे बैठते है।

(**शिवराम को साथ लिये चलते है**)

— : (**जाते-जाते पूरन से**) सन्तू आये तो हुक्का बाहर भिजवा देना पूरन !

पूरन : जी बहुत अच्छा।

[**चले जाते है, रानी तेज़-तेज़ आती है और भाई के गले लग जाती है**]

रानी : (**रुँधे हुए गले से**) पूरन !

पूरन · (**उसकी पीठ थपथपाते हुए**) क्यो रानी, क्या बात है ?

रानी : पिता जी मुझे फिर वहाँ भेजना चाहते है। तुम्ही कहो, मै क्या करूँगी, वहाँ जा कर ? क्या इस तरह उनके लोभ का पेट भरने से मेरा घरेलू जीवन सुखी हो सकेगा ?

पूरन : तुम चिन्ता न करो, तुम्हारी इच्छा के बिना तुम्हे कोई वहाँ नही भेज सकता।

रानी : (**रुँधे हुए गले से**) पूरन भय्या !

पूरन : (**उसकी पीठ थपथपाते हुए**) मै कहता हूँ, तुम जरा भी न घबराओ !

रानी : पिता जी दूसरो से तो कुछ नही कहते, लेकिन अपने मन में वे भी मुझे कम दोषी नही समझते। (**अचानक पूरन की आंखों में देखते हुए**) पूरन क्या तुम भी मुझे ही दोषी समझते हो ?

पूरन : दोषी ? (**जोर दे कर**) कभी नही। मुझे तो इस बात का गर्व है, कि तुमने अपने स्वाभिमान की रक्षा की।

रानी : मै उस दम घोटने वाले वातावरण मे किस तरह रह सकती थी ? मुझे पिता जी का डर न होता तो मै कभी की आ जाती। मुझे भय था, वे मुझे फिर उसी नरक मे जाने को कहेगे। पहली बार जब मै आयी थी, तो जानते हो, उन्होंने कितना शोर मचाया था ? उस वक्त मैं समझती थी, वे लोग अपनी गलती मान जायेगे, इसलिए मैंने पिता जी से सब बाते न कही थी। लेकिन इस बार, सब कुछ बता देने पर भी, मेरी बात मान लेने पर भी, वे फिर मुझे उसी नरक मे भेजने का यत्न कर रहे हैं।

पूरन : तुम किसी तरह की चिन्ता न करो रानी! पिता जी पति को पत्नी का परमेश्वर समझते हों तो समझें, मै ऐसा नही समझता। पति मेरे निकट पत्नी का परमात्मा नही, उसका साथी है और उस साथ को निबाहने की जिम्मेदारी पत्नी पर ही नहीं, पति पर भी है।

[पण्डित ताराचन्द और राय सरदारीलाल बातें करते हुए प्रवेश करते हैं]

ताराचन्द : अजीब मौसिम है यह भी, सरदारी लाल, धूप में बैठो तो गर्मी लगती है और छाया मे बैठो तो ठडक। (**हँसते हैं।**) अभी दो मिनट पहले धूप कितनी प्यारी लग रही थी, लेकिन इतने ही मे सिर चकराने लगा। (**पूरन से**) ज़रा सन्तू को भेजो पूरन, हुक्का ताजा कर जाय। और देखो बाहर कोई तुमसे मिलने आया है।

पूरन : जी !

(जाता है। रानी भी जाने लगती है।)

ताराचन्द : रानी बेटा, तुम्हारे चाचा आये है।

रानी : (**मुड़ कर**) चाचा जी, प्रणाम।

सरदारीलाल : (**बैठते हुए**) जीती रहो, बेटी ! सोहागवती बनो और अपने घर सुखी रहो !

(रानी लजाती हुई चली जाती है।)

ताराचन्द : (**बैठते हुए**) तुम ने देखा सरदारीलाल, रानी कितनी दुबली हो गयी है ? पहले से आधी भी नही रही। जैसा मैंने कहा है, तुम एक बार वैसे ही कोशिश कर देखो। यह जब तक यहाँ है, मै और किसी काम मे ध्यान नही लगा सकता।

सरदारीलाल : मैंने तुमसे कह दिया, मै पूरी कोशिश करूँगा।

[सन्तू आता है और हुक्का उठा कर ले जाता है सरदारी लाल तख्त के किनारे बैठते है।]

ताराचन्द : (कमरे मे घूमते हुए) भगवान तुम्हारा भला करे। रानी जैसी मेरी बेटी है सरदारी लाल, वैसे ही तुम्हारी है। मै तो सच पछता रहा हूँ वहाँ इसका ब्याह करके, पर जो हो चुका, हो चुका। मै नही चाहता कि बात अब और बढे। किसी ने कहा है––आँख ओझल पहाड ओझल––दूर रहे तो दूर हो जायँगे। मै जानता हूँ, त्रिलोक रानी को पसन्द करता है। ब्याह से पहले उसने उसे देख भी लिया था। उसे जिस बात की शिकायत है, वह मै दूर कर दूगा। मोटर और मकान ही की बात है, वह मै दे दूगा, मेरी बस एक ही शर्त है......

सरदारीलाल : वह मै समझता हूँ। इस में उसी का लाभ है। वह अलग हो जायगा तो सुख से रहेगा।

तारा चन्द : असल मे सारे झगडे की जड़ तो यही बात है। मैने जो मोटर और मकान नही दिये तो उसका एक बड़ा कारण यह भी था। जब मुझे रानो से पता चला कि उन्हे दहेज से निराशा हुई है, तो मै कचहरी वाला मकान और बडी फोर्ड देने ही वाला था, लेकिन तभी मुझे पता चल गया कि राय बहादुर के सभी मकान गिरवी पड़े हुए है। तब मैने सोचा कि जल्दबाज़ी न करनी चाहिए। जिसकी भूख इतनी बडी हो उसे एक कौर से क्या होगा ! मेरा मकान उन्हे कुछ सहारा चाहे देता, उनकी बिगड़ी साख तो क्या बना सकता था !

सरदारीलाल . तुमने दे दिया होता, उन्हे कुछ सहारा ही मिल जाता।

ताराचन्द : मै दे देता, पर उन्होने जिस तरह रानो को परेशान

करना शुरू किया, जिस तरह मुझे और मेरे पुरखो को गालियाँ दी, और जिस तरह रानी को घर से निकलने पर मजबूर कर दिया, उससे मेरा मन बुझ गया। मैंने तय किया कि मै उस वक्त मकान और मोटर दूगा, जब त्रिलोक भेडियो की उस माँद से अलग हो जायगा।

(**राज उदास-उदास आती है।**)

राज : (**अपनी उदासी को छिपाने और हँसने की चेष्टा करते हुए**) पिता जी प्रणाम, चाचा जी प्रणाम !

ताराचन्द . अरे राजी (**मुड़ कर प्यार से उसके सिर पर हाथ फेरते हुए**) कहो बेटी प्रसन्न तो हो ?

सरदारीलाल : अच्छा भइ, मै चलता हूँ।

ताराचन्द : अरे भाई ठहरो ! मै भी चलता हूँ तुम्हारे साथ ! कम से कम दरवाजे तक तो पहुँचा आऊँ !

सरदारीलाल : (**उठ कर**) यह शिष्टाचार रहने दो !

ताराचन्द : तुम ने राजी के प्रणाम का उत्तर नही दिया सरदारीलाल!

सरदारीलाल : (**मुड़ कर**) जीती रहो, जीती रहो, बेटी !

ताराचन्द : (**राजी के कंधे पर हाथ रख कर सरदारीलाल के साथ-साथ चलते हुए**) राजो !

राज जी पिता जी !

ताराचन्द · यह तुम इतनी दुबली क्यो हो गयी हो ?

राज : (**दुख को दबाने और मुस्कुराने की कोशिश करते हुए**) जी नही, मै तो पहले से मोटी हो गयी हूँ।

ताराचन्द : (**चलते-चलते क्षण भर रुक कर**) तुम्हारा सामान कहाँ है ?

राज : ट्रक है, सो बाहर बरामदे मे पडा है ।

ताराचन्द : मदन नही आया ?

राज : नही, मै अपने देवर के साथ आयी हूँ ।

ताराचन्द : तो कहाँ है वह, साथ क्यो नही लायी ?

राज : जी उसे जल्दी थी । मुझे यहाँ छोड़ कर स्कूल चला गया है । जीजी कहाँ है ?

ताराचन्द : यही थी, शायद उधर आँगन मे हो ।

राज : और भय्या ?

ताराचन्द : वह भी उधर बागीचे मे होगा (**उसकी पीठ को थपथपाते हुए**) और तो सब प्रसन्न है, तुम्हारे सास-ससुर.....

राज : (**चलते-चलते शरमा कर**) जी !

ताराचन्द : (**उसे छोड़ कर सरदारीलाल के कंधे पर हाथ रख कर चलते हुए**) बडे भले है राजी के ससुर सरदारीलाल! —सीधे-साधे, भोले-भाले, नेक खयाल और धर्म परायण ! घमड तो उन्हे छू भी नही गया। जब मै पहले-पहल राजी के लिए उनसे मिला तो कहने लगे (**रुक कर**) हमे लेन-देन मे विश्वास नही पडित जी, हम तो आपको चाहते है । आप हमारे हो गये तो और क्या चाहिए ! (**फिर चल पड़ते है।**) मै तो ऐसे ही लोगो को पसन्द करता हूँ। और भाई मैने फैसला कर लिया है कि त्रिलोक के नाम हो या न हो,

पर मदन के नाम एक मकान जरूर कर दूंगा। लड़का तो बेचारा गाय है।

(चबूतरे के दरवाजे से निकल जाते हैं।)

राज : **(अपने पिता की अन्तिम बात सुन कर रुकती है, मुड़ कर, जाते हुए अपने पिता को देखती है। ओठों पर तिक्त, व्यंग्यमयी मुस्कान फैल जाती है)** बेचारा गाय !

[धम्म से वहीं आंगन के दरवाजे के पास कौच मे धँस जाती है। सन्तू हुक्का ताजा कर के लाता है।]

सन्तू : अरे राज ! कहो बेटी, कब आयी ?

राज : अभी आ रही हूँ, सन्तू !

(बाग के दरवाजे से पूरन भागा आता है।)

पूरन : हल्लो राजी !

राज : भय्या !

(पूरन के गले से लिपट जाती है।)

पूरन : पास से निकल गयी और मुझे देखा तक नही ! **(जब उसके मुंह को देखता है तो चौकता है)** अरे तुम तो पीली हो गयी हो, हल्दी खाती रही हो या **(हँस कर)** जीजा जी ने ......?

राज : **(पीड़ा-मिश्रित-क्रोध से)** भय्या !

पूरन : अच्छा-अच्छा भई, **(पीठ थपथपाता है)** नाराज क्यो होती हो जीजा जी का नाम सुन कर ? हमारी लाल गोरी बहिन को ले के हल्दी सी पीली कर दिया और हम इतना भी न कहे कि......

राज : भय्या, तुम कभी न मानोगे !

पूरन : अच्छा भाई, बिगडती क्यो हो ? (**रानी को आवाज देता है ।**) रानी, देखो राजी आयी है । (**सन्तू से, जो हुक्का रख कर जा रहा है**) सन्तू, जरा रानी को भेज, और राज का ट्रंक उठा कर भीतर रख, बाहर बरामदे मे पडा है ।

सन्तू : (**जाते-जाते**) जी बहुत अच्छा !

(**आंगन के दरवाज़े से रानी भागी आती है**)

रानी . (**राज से गले मिलते हुए**) अरे तू इधर बैठक मे क्या गोबर-गणेश बनी बैठी है । उधर क्यों नही चली आयी ।

राज : पिता जी और चाचा सरदारीलाल बैठे थे, इसलिए !

(**कॉल-बेल बज उठती है ।**)

पूरन : (**असन्तोष से**) यह इतवार का दिन तो एक मुसीबत बन गया है । सुबह से जो यह कॉलबेल बजनी शुरू होती है......।

[**कॉल-बेल फिर बजती है और पूरन "जी आया" कहता हुआ भागा जाता है ।**]

राज : (**रानी के गले से चिमटती हुई रुँधे गले से**) जीजी !

[**रानी उसकी पीठ थपथपाती है । राज धीरे-धीरे रोने लगती है ।**]

रानी : अरे !.... .बात क्या है ?......राजो !...... क्यों ?

राज : (**और भी चिमटते हुए**) जीजी !

(**और भी जोर से सिसकने लगती है।**)

रानी : क्यो राजो, क्या बात है ?

राज : (**आँसू पोंछते हुए, तनिक सम्हल कर**) बात क्या होगी, योही तुम्हे देख कर मन भर आया। कहो त्रिलोक जीजा जी आये ?

रानी : (**व्यँग्य से हँस कर**) आ गये ! तुम अपनी कहो, तुम्हे क्या दु:ख है ?

राज : नही जीजी, मै हर तरह से सुखी हूँ !

रानी (**हँसते और उसे साथ लिये रंगमंच के किनारे आते हुए**) सुख की कोई झलक तो तुम्हारे मुख पर दिखायी नही देती ! (**दोनों हाथ उसके कन्धों पर रख देती है।**) देखो राजो, मुझसे न छिपाओ, मै सब भुगते बैठी हूँ।

राज . कुछ भी तो नही जीजी !

रानी . क्या यह सब तुम मेरी ओर देख कर कह सकती हो ?

राज : (**मुस्कराने का असफल प्रयास करते हुए**) क्या ?

रानी . मुस्कान को पीडा मे छिपाने की कोशिश न करो, राजो, तुम्हारी ऑखे तो डबडबा रही है।

राज (**भरे हुए गले से**) जीजी !

(**सहसा रानी के गले से चिमट जाती है।**)

रानी : (**उसकी पीठ थपथपाते हुए दीर्घ-निश्वास भर कर**) ससार भर मे ब्याह स्त्री के लिए सुख-शान्ति का सन्देश लाता है, पर हमारी गुलामी के बन्धन इसके बाद और भी मजबूत हो जाते है। (**राज सिसकती है**) बस-बस,

दुख को दिल में न छिपाओ बहिन, घाव कर देता है। और कुछ समय बाद वही घाव नासूर बन जाता है। क्या सास तग करती है ?

राज : नही, वे बेचारी तो कभी कुछ नही कहती ।

रानी : ससुर ?

राज : वे तो देवता है ।

रानी : ननदे ?

राज : वे न होती तो मै अब तक शायद खत्म हो चुकी होती।

रानी : तो फिर .....तो फिर तुम्हारे......

(राज बहिन के गले से चिमट कर सिसकने लगती है ।)

— : लेकिन प्रोफेसर मदन तो पढ़े-लिखे आदमी है । क्या बात है, कह डालो ।

(राज चुपचाप सिसके जाती है ।)

— : मुझसे न कहोगी तो और किससे कहोगी ?......(**राज सिसके जाती है ।**)......कुछ कहो भी । प्रोफ़ेसर साहब तो बडे हँसमुख और रसीले आदमी है ।

(उसे फिर ले जा कर कौच पर बैठा देती है ।)

राज : (**आँसू पोंछते हुए, धीरे-धीरे**) सुनती हूँ, बडे हँस-मुख थे । ठहाके मारते थे तो मकान गूज उठता था; लेकिन मैने कभी उनका ठहाका नही सुना । मुस्कराते है, पर उस मुस्कान मे उल्लास का तो कही ढूढे से भी पता नहीं चलता ।

रानी लेकिन वे तो ......ब्याह मे तो......

राज : एक दिन मैने पूछा—"सुनती हूँ, आप खूब हँसते थे, ठहाके मारते थे, मैने तो एक भी नही सुना"—तब ठहाका मार कर हँस दिये—खाली, खोखला, नीरस ठहाका !

रानी · (**समझने की कोशिश करते हुए**) हूँ ।

(स्वयं भी कौच के बाजू पर बैठ जाती है ।)

राज : कही हँस भी रहे होते और चली जाती तो उनकी हँसी तत्काल बन्द हो जाती । काले-काले से मेघ उनके मुख पर घिर आते । फिर जो वे मुस्कराते भी तो उनकी वह मुस्कान, कही योजनो दूर से आने वाली, थकी-हारी परदेसिन सी दिखायी देती ।

रानी : उन्होने तुम्हे पसन्द नही किया !

राज : सुनती हूँ, किसी बहुत पढी-लिखी लडकी से ब्याह करना चाहते थे, किन्तु एक तो उस लडकी के माता-पिता न थे, दूसरे वह ब्राह्मण न थी, इसलिए इनके माता-पिता तैयार न हुए । इन्होने बहुतेरा समझाया, पर माँ ने उन सब कष्टो का वास्ता दिलाया, जो इन्हे पाल-पोस कर बडा करने मे उसने सहे थे और पिता ने उन सब मनीआर्डरो की रसीदो का ढेर लगा दिया, जो इनकी शिक्षा के निमित्त वे हर महीने भेजते रहे थे । बारह हजार की रसीदे थी और वे चाहते थे कि उनका लड़का उनकी इच्छानुसार शादी करे ।

रानी : (**सव्यंग्य**) और लोग माँ-बाप की ममता के गीत गाते है ।

[**उठ कर कमरे का एक चक्कर लगाती है और फिर उसके पास आकर बैठ जाती है ।**]

रानी : तो उन्होंने तुम्हे पसन्द नही किया !

राज : मै क्या जानू, जीजी ! ऐसा लगता है, जैसे वे उस लडकी को भुला नही सके !

रानी : तुम उनका मन बहलाने की कोशिश करती ।

राज : मैने लाख कोशिश की, पर असफल रही । उनके पास जाती तो ऐसे बैठे रहते, जैसे मुझसे कोसो दूर हों । बाते करते तो मालूम होता, जैसे मुझसे नही, शून्य से बाते कर रहे है । लेटते तो लगता, जैसे बर्फ के पानी मे नहा कर लेटे है ।

रानी : (**केवल दीर्घ-निश्वास लेती है ।**) हूँ..... हूँ......!

राज . हाँ, जब मै रोती तो मुझे बाहो मे भर कर प्यार करने लगते । कहते—तुम अभागी हो राज, मै भी अभागा हूँ और दर्शनो भी......।

रानी . दर्शनो ?

राज : वही लड़की, जिससे वे शादी करना चाहते थे । पूरा नाम सुदर्शन है । एम० ए० है । उसने अभी उनका पीछा नही छोड़ा ।

रानी : अजीब बेशर्म लडकी है ।

राज . कभी जब मै कहती—आप जिसे चाहे शौक से प्यार करे, पर मुझे भी न ठुकरायें, तो मुझे बाहो मे भीच लेते, पर साफ लगता, जैसे मन से नही, सिर्फ मेरे रोने से मजबूर होकर प्यार करते है । और कभी इस तरह

प्यार करते-करते अपने बाल नोचने लगते। कहते—मै कायर हूँ, कायर। माता-पिता के भय से मैंने अपना और तुम्हारा जीवन नष्ट कर दिया। और फिर रोने लगते। उस समय जीजी, न जाने मेरे दिल को क्या होने लगता। मै उन्हे बाहो मे भर लेती। पर मेरे स्पर्श मे जैसे हजार बिच्छुओ के डक हो, वे हडबड़ा कर उठ बैठते। मुझे परे हटा देते। पागलो की तरह चिल्ला उठते—तुम मुझसे क्यो चिमटती हो, राज ? तुम्हे मुझको छोड़ कर चला जाना चाहिए, तुम्हे मेरा कोई काम न करना चाहिए। (**दीर्घ-निश्वास लेती है।**) लेकिन जीजी, न जाने क्यो, जितना वे मुझसे भागने की कोशिश करते, उतना ही मै उनके निकट होना चाहती !

रानी : (**थकी-सी आकर उसके पास कौच पर बैठ जाती है।**) तो अब वे तुम्हारे पास नही आते ?

राज : नही, कुछ दिन पहले तक लगातार आते थे, पर जब भी आते, ऐसा लगता जैसे बॅधे-बॅधे आये है।

रानी : (**सिर्फ लम्बी सांस भरती है।**) हूँ !

राज : (अपनी बात जारी रखते हुए) एक दिन कहते थे—क्यो न हम अभी कुछ देर दो मित्रों की तरह रहे। धीरे-धीरे हम एक दूसरे को समझ जायँगे। एक दूसरे के गुण-दोषो को पहचान लेंगे। फिर हम पति-पत्नी की तरह रहेगे—पति-पत्नी की तरह ऐसी ज़िन्दगी बितायेगे, जिसका हर नया दिन थकान और उकताहट लाने के बदले स्नेह और उल्लास लायेगा।

रानी : तुम ऐसा ही कर लेती !

राज : मैंने कोशिश की, पर तब सास जी ने कहा—तुम तो पगली हो। वह तुमसे दूर रहना चाहता है। उस पर उस चुड़ैल ने जादू कर रखा है। उसका मन उड़ता रहता है, बाँध कर न रखोगी तो उड़ जायगा और उड़ा हुआ पछी फिर हाथ नही आता। मैंने उन्ही का कहा माना। जैसे वे कहती रही, मै करती रही, पर इस प्रयास मे जो थोड़ा बहुत बन्धन था, वह भी टूट गया।

[रानी कुछ कहना चाहती है, पर नहीं कहती, क्षण भर दोनों चुप रहती हैं। राज उठ कर धीरे-धीरे कमरे में घूमने लगती है।]

— : ज्यों-ज्यों मै उनके निकट जाने का प्रयास करती, वे मुझ से दूर भागते। दोपहर को उन्होंने घर आना छोड दिया। लच कालेज ही मँगा लेते। शाम को भी देर से आते। धीरे-धीरे यह देर बढ़ती गयी। बहुत रात गये घर आते और चुपचाप बिस्तर पर लेट जाते। मै चाहती उनके पाँव दबाऊँ, उनके सुख-दुख की बात पूछूं, किन्तु मेरी तो शकल ही से जैसे उन्हे भय आता—"मुझे मत छेडो, मुझे सोने दो!" यही कहा करते। मैं चुप-चाप रोने लगती तो लपक कर उठ बैठते और घटों आँगन मे चक्कर लगा कर गुजार देते। कभी चिढ़ कर कहते—"तुम जाने किस मिट्टी की बनी हुई हो? तुम्हे स्वाभिमान छू भी नही गया। मैं तुमसे इतनी घृणा करता हूँ और तुम मेरे पाँव दबाना चाहती हो!"

(हताश-सी तख्त पर बैठ जाती है।)

रानी : (**उठ खड़ी होती है ।**) मै हैरान हूँ, तुमने यह सब कैसे सहा ! मै तो बहुत पहले छोड़ कर चली जाती ।

राज : न जाने क्यों जीजी, उनकी घृणा पर मुझे कभी क्रोध नही आया । जब-जब उन्होंने मुझसे घृणा का बर्ताव किया, मेरे मन में सदा दया उपजी । सदा जी हुआ, उनके पास जाऊँ, अपने प्यार से उनके घावो को भर दू । पर मै जितना उनके निकट जाने की कोशिश करती रही, वे मुझसे दूर होते गये ।

(गला रुँध जाता है और आँखों से आँसू बहने लगते हैं ।)

रानी : (**उसके पास बैठते और उसके कंधे पर प्यार का हाथ फेरते हुए**) राजी !

राज : (**उसी प्रकार रुँधे गले से**) निरन्तर रोते-जागते मेरी यह हालत हो गयी । (**सिसकी रोक कर**) घर वालो से आँख मिलाने मे मुझे लज्जा आने लगी । ऐसा मालूम होने लगा, जैसे सब मुझे दया की दृष्टि से देखते है । जैसे उनकी यह दया धीरे-धीरे घृणा मे बदल रही है ।

रानी : मै पूछती हूँ, तू पहले ही क्यो न चली आयी !

राज : आशा का एक अज्ञात-सा तार बँधा हुआ था जीजी !

[कुछ देर चुप रहती है । रानी चुप-चाप शून्य मे देखती घूमे जाती है । दाँत उसके भिंचे हुए है और लगता है, जैसे उसके मन मे क्रोध का एक दुर्निवार बवण्डर उठ रहा है ।]

— : परसो पता चला कि अब हॉस्टल ही में रहेगे । सुपरिंटेडेट हो गये है । बस वह तार भी टूट गया । मैं

ने पत्र लिख कर उन्हे दो-तीन मिनट के लिए बुलवाया और कहा—मेरा मन यहॉ नही लगता, मुझे मैके भिजवा दो ! कहने लगे—"हॉ, तुम कुछ दिनो के लिए मैके हो आओ ।" और चुपचाप उन्होने मेरी सब चीजे ट्रक मे भर दी । एक छल्ला तक सास के पास न रहने दिया और छोटे भाई से कहा कि वह मुझे छोड़ आये । इसके बाद जैसे आये थे, वैसे चले गये । न उन्होने मुझ से कुछ कहा और न मैने ही उनसे कुछ पूछा ।

रानी : सास ने रोका नही ?

राज . उन्होने बहुतेरा कहा । उनकी ओर देखती तो वहॉ से हिलने को जी न चाहता । मै तो उनकी सेवा मे जिन्दगी भर पडी रहती, लेकिन वहॉ एक वे ही तो नही, दूसरे भी है और उन सब की नजरो का सामना करना मेरे बस की बात न थी ।

रानी : (**जिसका क्रोध शब्दों का रूप धर लेता है ।**) मै पूछती हूँ, जब वे एक और लडकी को चाहते थे, तो उन्होने क्यों की यहॉ शादी ? वे तो पढ़े-लिखे है, समझदार है, प्रोफेसर है । बच्चे नही कि उनके पिता ने दो चॉटे मारकर उन्हे ब्याह के मंडप पर बैठा दिया हो । क्यों की उन्होने यह शादी ?

राज : माता-पिता के उपकारो का बदला चुकाने के लिए ।

रानी : (**तिक्त व्यंग्य से**) तो फिर उन उपकारों को इतनी जल्दी क्यों भूल गये ?

राज : मैने भी एक दिन पूछा था। कहने लगे—"मेरे लिए ब्याह करना आत्म-हत्या करना था। मै सोचता था—मैं अपने भावों का गला घोट दूगा, अपने अतीत के लिए मर जाऊँगा, लेकिन मै मर नही सका और जी भी नही सका। मै अपाहज हो गया हो गया हूँ। तुम उस आदमी की कल्पना करो, जो आत्म-हत्या करने के प्रयास मे अपाहज हो जाय !"

रानी : इतनी सज-धज से आये थे आत्म-हत्या करने !

राज : सज-धज उनके सगे-सम्बन्धियो के कारण थी।

रानी : इतना हँसते थे, ठहाके मारते थे।

राज : वह सब तो दिखावा था, दिल तो वे पीछे ही छोड़ आये थे।

रानी : (**लगभग चिल्ला कर**) लेकिन तुम्हारे लिए उन्होंने क्या सोचा ? तुम्हारा भी तो उन पर कुछ अधिकार है, तुम उनकी ब्याहता हो !

राज . एक दिन सास के कहने पर मैं उनके पास गयी थी। उदास, थके-थके से, वे बिस्तर पर लेटे हुए थे। मैंने हँस कर कहा—"दर्शनो की बात सोच रहे हो ?" एक उदास सी मुस्कान उनके ओठों पर फैल गयी। मैंने कहा—"मेरा भी अधिकार है। मै आपकी परिणीता हूँ। इतने बारातियो के सामने, यज्ञ की अग्नि को साक्षी करके, आप मुझे ब्याह लाये है !" कहने लगे—"तुम्हारे, अधिकार की नीव एक सामाजिक प्रथा पर टिकी है। हृदय से उसका कोई सम्बन्ध नही। सुदर्शन का अधिकार

मेरे हृदय से सम्बन्ध रखता है । बारातियो, पण्डितो, पुरोहितो ने, हमारे माता-पिता ने, यज्ञ की अग्नि ने हमे एक दूसरे के शरीर सौप दिये है. हृदय तो नही सौपे ।"

रानी : यही तो मै पूछती हूँ । यदि उनके हृदय पर किसी और का अधिकार था तो क्यो की उन्होंने शादी ?

राज : कहते थे—"मैने सोचा था मन की चौखट से सुदर्शन का चित्र हटाकर तुम्हारा लगा लूगा, लेकिन मै सफल नही हो सका ।"

रानी कैसी निर्लज्ज लडकी है यह दर्शनो । जब उन्होने उसका इतना अपमान करके तुमसे ब्याह कर लिया तो वह किस तरह उनका पीछा पकडे है ! मै जीवन भर ऐसे आदमी का मुह न देखती ।

राज शायद वह अब भी उनसे प्रेम करती है ।

रानी . मै लाख प्रेम करती, पर उस अपमान के बाद, अपने स्वाभिमान को छोड कर, उनके पीछे यो मारी-मारी न फिरती ।

(बृजनाथ और ताराचन्द बाते करते हुए प्रवेश करते है ।)

ताराचन्द : तुम जरा बात कर देखो बृजनाथ । तुम उसके पिता के घनिष्ट मित्र हो । तुम्हारा वह बडा आदर करता है । तुम्हारी बात मानता है । रानो तुम्हारी भी तो बेटी है ।

रानी : चलो आँगन मे चलकर बैठे !

[दोनों चली जाती है लेकिन नीचे के सम्वादों में कभी-कभी आँगन के पर्दे से लगकर बातें सुनती है ।

ताराचन्द आकर तख्त पर बैठते हैं और बृजनाथ कौच पर ।]

ताराचन्द : (**हुक्का गुड़गुड़ा कर**) यह चिलम तो बुझ गयी । सन्तू, ओ सन्तू !

सन्तू : (**आँगन से**) जी सरकार !

(भागा आता है ।)

ताराचन्द · यह हुक्का नही ताज़ा किया तूने ? चिलम तो बिल्कुल ठडी पड़ी है ।

सन्तू . मै तो ताजा करके रख गया था । सरकार ही चले गये थे । अभी लाता हूँ ।

(चिलम लेकर चला जाता है !)

ताराचन्द . (**खाली हुक्का गुड़गुड़ाते हुए**) जब तुम्हे सब बातो का पता है बृजनाथ तो फिर कोशिश क्यों नही कर देखते ? मैंने वृन्दाबन से कह रखा है, शिवराम, सरदारीलाल और दूसरे मित्रो से भी कह रखा है । (**भेद भरे स्वर मे**) मै स्वय उससे यह बात नही कर सकता । उसे जो शिकायत है, उसे मै दूर करने को तैयार हूँ । लेकिन यदि मै उससे पूछूगा, तो वह इस शिकायत के अस्तित्व ही से इन्कार कर देगा । रानो को फिर से बसाने के लिए तुम युक्तियाँ तो दूसरी देना, लेकिन चतुराई मे इस बात की ओर भी संकेत कर देना कि यदि वे दोनों अलग रहेगे तो मै अपना एक मकान उनके नाम कर दूगा और कुछ समय बाद मोटर भी ले दूगा। मेरी लडकी वहाँ आराम और आदर से रहे, यही मै चाहता हूँ ।

बृजनाथ मैं कोशिश करूंगा।

ताराचन्द (**खाली हुक्का गुड़गुड़ा कर**) तुम समझदारी से काम लोगे तो मुझे पूरा विश्वास है कि यह बिगडी हुई बात बन जायगी (**और भी भेद भरे स्वर मे**) और फिर कचहरी मे तुम्हारा जो प्रभाव है, उसे भी तुम काम मे ला सकते हो। धमकी देना ही काफी होगा। (**और भी धीरे-धीरे**) कही माँ या भाभी के कहने पर दूसरी शादी न कर ले, इसलिए जो भी करना है, जल्दी करना है। ये अनपढ भाभियाँ और माये जो न करें थोडा है। त्रिलोक ज्यो-ही रानो को लेकर अलग हुआ, मैं मकान उसके नाम कर दूंगा। तुम्हारी इस कोशिश से यदि रानो की ज़िन्दगी सँवर जाय तो वही नही, मै भी जीवन भर तुम्हारा आभार मानूगा।

[**सन्तू चिलम लाकर हुक्के पर रखता है। ताराचन्द हुक्के के लम्बे-लम्बे कश खींचते है।**]

बृजनाथ : मै पूरी कोशिश करूँगा, लेकिन तुम्हे यकीन है कि और कोई बात नही।

ताराचन्द : यो तो बीसियो है, लेकिन सब की तह मे वही लोभ काम करता है। वह मानेगा नही, लेकिन तुम जरा चतुराई से काम लोगे तो वह राह पर आ जायगा।

बृजनाथ . मै आज ही उस से मिलूगा।

ताराचन्द · मुझे रानो के ब्याह मे बड़ा कटु अनुभव हुआ बृजनाथ। अच्छे-अच्छे योग्य और बुद्धिमान लड़के मेरी आँखो के सामने आये, पर मै इसी हठ पर अड़ा रहा कि लड़की

अपने से बड़े घर मे जाय । मै क्या जानता था, बाहर से बड़े दिखायी देने वाले, भीतर से खोखले होते है ।

बृजनाथ : मै तो सदा ही से इस बात के पक्ष मे हूँ कि घर की अपेक्षा लडका देखा जाय !

ताराचन्द : (**एक लम्बा कश लगा कर**) राजी के लिए मैंने लडका ही देखा है । मदन के पिता बेहद गरीब थे । गा-बजा कर, मुहल्ले-मुहल्ले रामायण और महाभारत की कथा करके उन्होंने अपने लडके को शिक्षा दिलायी और उनका सारा श्रम और त्याग सफल हुआ । एम० ए० करते ही उसे कालेज मे नौकरी मिल गयी । अब वह पी-एच० डी० की तैयारी कर रहा है । इतना समझदार, हॅसमुख भला लड़का है कि पल भर को जो उससे बाते करता है, उसके गुण गाने लगता है ।

बृजनाथ : मुझे यह सुनकर बडी खुशी हुई कि राज इतने अच्छे घर ब्याही गयी ।

ताराचन्द : (**सोल्लास**) मदन तो गाय है गाय ! राज तो वहाँ सचमुच राज करेगी !

[**प्रसन्नता से हुक्का गुड़गुड़ाने लगते है । शिवराम घबराया हुआ प्रवेश करता है ।**]

शिवराम ताराचन्द ! तुमने सुना, तुम्हारा जमाई दूसरी शादी कर रहा है !

[**हुक्के की नली ताराचन्द के हाथ से छूट जाती है और वे उठने का प्रयास करते है ।**]

ताराचन्द . (**आधे बैठे आधे उठे**) कौन, त्रिलोक ?

शिवराम नही मदन !

[**ताराचन्द फिर धम्म से तख्त पर बैठ जाते है। आँगन के दरवाज़े से लगी राज के गिरने और रानो के चीखने की आवाज आती है।**]

रानी : पिता जी. ...पिता जी .....!

शिवराम मै कहता हूँ, तुम बैठ क्या गये हो ताराचन्द ? कुछ करना चाहते हो तो अभी कार ले कर चलो। 'खाई वालों की धर्मशाला' मे हो रही है शादी। मुझे तो विष्णु पण्डित से पता चला। उसका वह सिर-फिरा लड़का गया है ब्याह पढाने।

ताराचन्द . (**तत्काल उठ कर**) सन्तू .....सन्तू.. . !

(**सन्तू भागा आता है।**)

रानी (**आंगन से**) पिता जी .....पिता जी.....!

ताराचन्द : कार ले कर जाओ और फैक्टरी से बिजली पहलवान और कुछ दूसरे मजदूरों को लेकर 'खाई वालो की धर्मशाला' मे पहुँचो। मै तुम्हारी कार मे चलता हूँ शिवराम !

शिवराम मै तो पैदल ही भागा आया हूँ।

बृजनाथ : चलिए मै आपको अपनी कार मे ले चलता हूँ।

ताराचन्द : (**चलते-चलते रुक कर**) क्या यह शादी मदन के पिता की इच्छा......?

शिवराम : (**दोनों बाहों से उन्हें धकेलते हुए**) चलो चलो, बताता हूँ।

(**सब जल्दी-जल्दी निकल जाते हैं।**)

रानी : (आँगन से) पिता जी.. ....पिता जी.......
सन्तू......सन्तू......पूरन......पूरन.........!

[आँगन से घबरायी हुई भागी आती है। पूरन बाग की ओर से भागा आता है। दोनों टकराते-टकराते बचते हैं। एक दूसरे को थामते हैं।]

पूरन : क्या बात है? क्या बात है?

रानी : राज बेहोश हो गयी है। देखो तो उसके दाँत पच्ची हो गये हैं।

(दोनों आँगन की ओर को भागते हैं)

(पर्दा गिरता है।)

दूसरा अंक

[पर्दा कुछ क्षण बाद उसी कमरे में उठता है। निमिष भर बाद पूरन और रानी अचेत राजी को उठाये हुए आते हैं।]

पूरन : क्या हो गया इसे ?

रानी : बस खड़े-खड़े गिर पड़ी !

(उसे तख्त पर लिटा देते हैं।)

पूरन : घबराओ मत, लपक कर थोड़ा-सा पानी ले आओ।

(रानी जाती है।)

— : एक चमच भी लेती आना, **(राज को हिलाते हुए)** राजी......राजी......!

(राज बेसुध है।)

— : राजी......राजी......!

[उठकर बिजली का पंखा चला देता है। रानी पानी लाती है ।]

रानी : अरे, तुमने पंखा खोल दिया ? यहाँ तो पहले ही ठंड है !

पूरन : तुम चिन्ता न करो । पानी लाओ, इसके मुह पर छीटे दू ।

[रानी पानी देती है। पूरन राज के मुख पर छींटे मारता है ।]

— : राजी......राजी.....!

(राज पूर्ववत बेसुध है ।)

— : (फिर छींटे मारता है ।) राजी......राजी....!

(राज हिलती नही, बेसुध पड़ी रहती है ।)

पूरन : ज़रा चमच दो ।

रानी : मै भूल गयी, अभी लायी ।

(भाग जाती है ।)

पूरन : (उसके बालों पर हाथ फेरते हुए) राज......राजी .. ...और कहती थी मै बडी प्रसन्न हूँ ससुराल मे !

(रानी चमच ले आती है ।)

रानी : यह लो चमच ।

पूरन : तुम जरा इसकी नाक उँगलियो से दबाओ, मै पानी का चमच मुंह मे डालता हूँ ।

(रानी राज की नाक दबाती है ।)

— : (चमच भर कर मुंह मे डालते हुए) यह हिस्टीरिया

का दौरा है या कुछ और ? पहले तो कभी इसे यो मूर्च्छा न आयी थी।

रानी दाँत पच्ची है, पानी तो बह गया सारा।

पूरन तुम चिन्ता न करो, नाक दबाये रखो !

[रानी बहिन की नाक दबाये रखती है। साँस के रुक जाने से राज के दाँत खुल जाते है। पूरन पानी का चमच उसके मुह मे डालता है। कुछ क्षण बाद राज तेज-तेज साँस लेती है। वह दूसरा चमच उसके मुंह मे डालता है। अचेतावस्था मे गरगराहट के साथ राज पानी पी जाती है।]

पूरन : (**प्यार से**) राजी......राजी.....!

रानी : (**प्यार से**) राजो... . राजो .....!

[राज पूरी तरह तो होश मे नहीं आती, किन्तु पहले उसका एक हाथ हिलता है, फिर उसकी आंखें खुल जाती है ।]

पूरन · (**प्यार से**) राजो, क्या बात थी ? चक्कर आ गया था ?

[राज उठना चाहती है। पूरन बांह के सहारे उसे उठा कर बैठा देता है।]

—— : कामरेड बिहारी आ गये, मै उनके साथ बातो मे उलझ गया। बात क्या है ? इतनी दुबली हो रही हो तुम। कभी शीशे मे अपना मुंह नही देखा ? खाने को नहीं देते रहे जीजा जी तुम्हे ?

रानी : तुम्हारे जीजा जी दूसरी शादी कर रहे है !

पूरन : क्या..... कौन ?

रानी : मदन !

पूरन : मदन ?

[**चौक कर उठ खड़ा होता है, सहारा हट जाने से राज फिर लेट जाती है ।**]

रानी : अभी चचा शिवराम ने बताया । 'खाई वालो की धर्म-शाला' मे हो रही है शादी । चचा शिवराम और बृजनाथ के साथ पिता जी वही गये है ।

पूरन : मुझे पहले ही डर था..... मैंने पहले ही कहा था ।

(**हताश-भाव से जाकर कौच मे धँस जाता है ।**)

रानी : एम० ए० पास लडकी है, जिसके न माता है न पिता ।

पूरन : शादी के लिए न माता की जरूरत है, न पिता की ।

रानी : जाति से भी वह खत्री है ।

पूरन : जाति का भी शादी से कोई सम्बन्ध नही । (**बेचैनी से उठता है ।**) उसके लिए साथी हमदर्द और हमख़याल होना चाहिए । (**क्षण भर चुपचाप घूमता है फिर**) किससे शादी कर रहे है प्रोफेसर साहब ?

रानी : कोई बे-हया लडकी है, जिसे अपने मान-अपमान का जरा भी खयाल नहीं । प्रोफ़ेसर मदन ने उसे छोड़कर राज से शादी कर ली तो भी वह उनके पीछे पड़ी है ।

पूरन : कौन जाने, वे ही उसके पीछे पडे हो ! क्या नाम है उसका ?

राज : दर्शनो ।

पूरन : सुदर्शना बेरी......मैं जानता हूँ .....मैं जानता हूँ ......उनके साथ ही पढ़ती थी। बहुत दिनो से उसके साथ प्रेम था उनका। हमारे 'कल्चरल-क्लब' में तो यह खबर गर्म थी कि उनकी सिविल मैरेज होने वाली है। लेकिन इससे पहले कि वे कुछ कर पाते, पिता जी वहाँ राज की सगाई कर आये।

रानी : तुमने पिता जी से उसी वक्त क्यो न कहा ?

पूरन : मैंने उसी दिन कहा था कि आप प्रोफेसर मदन को देख कर उनके पिता से बातचीत पक्की कर आये, स्वय उनसे भी तो मिलिए, उनके विचारो को भी तो जानिए। आपने अपनी ओर से पढा लिखा, भला, कमाऊ लडका ढूंढ़ लिया, यह भी जाना कि वह क्या चाहता है? लेकिन मुझे तो वे सिर-फिरा और आवारागर्द समझते हैं। मेरी बात पर उन्होने जरा भी कान न दिया (**कुछ क्षण चुपचाप घूमता है, फिर जैसे आन्तरिक झुंझलाहट से**) एक दिन चाचा वृन्दाबन से अपनी कारगुजारी की दाद चाह रहे थे (**चिड़चिड़ाहट भरे स्वर में लगभग नकल उतारते हुए**) "मै लडके के पिता से मिला हूँ, बडे सज्जन है, अहकार उनमे नाम को भी नही। भेट हुई तो कहने लगे, मै तो आपको पाकर धन्य हो जाऊँगा।" मै भी पास ही खडा था, मैंने कहा—"आपने उनकी इच्छा तो जान ली। उनके लडके की इच्छा भी तो जानिए। वह भी आपकी लडकी को पाकर धन्य होगा या नही ?"

राज : (**दुर्बल स्वर मे**) क्यो, मुझमे क्या दोष है, क्या मैं

उनकी हमदर्द नही ? मुझसे बढकर उनका हमदर्द कौन होगा ?

पूरन किन्तु शायद तुम उनकी हमख़याल नही !

राज . मैंने उनकी आधी बात भी कभी नही काटी ।

पूरन बात—बात काटने की नही । वे प्रोफेसर है, और वह एम० ए० है । दोनो एक दूसरे के स्वभाव को, एक दूसरे की आवश्यकताओं को समझते होंगे । तुम शायद उन्हें नही समझ सकती और वे भी शायद तुम्हे नही समझ सकते । मैंने पिता जी से यही कहा था—"आपने राजो को उचित शिक्षा नही दी और उसके सबसे बड़े गुण ये हैं कि वह अच्छा खाना पका सकती है और घर का काम बड़ी कुशलता और मितव्ययता से चला सकती है । कही ऐसा न हो कि उसके यही गुण वहाँ जाकर अवगुण बन जायँ ! लेकिन उन्होंने मुझे डाँट दिया । कहने लगे—"तुम्हे पढ़ाकर मै बडा सुखी हो गया हूँ, जो अब लड़कियो को पढ़ाऊँगा ।" मैंने कहा—"तब इसका ब्याह इतने पढ़े-लिखे से न कीजिए ।" कहने लगे—"तू मेरा बेटा है या बाप ?" (**कटु व्यंग्य से**) जैसे उनके बाप होने से मेरी बात ग़लत हो गयी ।

रानी : तुमने यह नही कहा कि वे दूसरी जगह शादी करना चाहते है ?

पूरन : मैंने कहा था । लेकिन वे बोले कि अच्छे लडको के बारे में ऐसी बाते लोग सदा उड़ाया करते है । यहाँ जोडने वाले दो है तो तोडने वाले चार । जब मैंने नाम-पता बताया, तो गरजे कि पंडित उदयशंकर का लड़का अपनी

जाति के बाहर कभी शादी नही कर सकता। अब वे ठहरे पुराने खयाल के अनपढ आदमी, मै उनसे कहाँ तक माथा फोड़ता। बहुतेरा ज़ोर लगाया, पर उन्होंने एक न सुनी। कहने लगे कि बाते करना जानता है, बहिन के लिए लड़का ढूढना पडे, तो पता चले। मैंने कहा, 'कुछ दिन रुकिए, मै बहुत अच्छा लड़का ढूढ़ दूगा।' बोले—"ढूढ़ लेगा अपनी तरह का निकम्मा और आवारा!"

रानी : पिता जी तो अनपढ और पुराने ख़याल के हैं, प्रोफेसर मदन तो नही। पिता जी की भूल तो साफ जाहिर है, लेकिन क्या प्रोफेसर मदन की कोई भूल नही? उन्हे क्या नही सोचना चाहिए था और फिर उन दोनों की गलतियों में राज बेचारी क्या करे? आखिर इसका क्या दोष है?

पूरन : (कटुता से) वही जो तुम्हारा......

रानी : मेरा?

पूरन : वकील साहब ने तुम्हे छोड दिया, क्योंकि पिता जी ने दहेज मे मकान और मोटर नही दी, लेकिन इसमें तुम्हारा क्या दोष है? पर जैसा कि मैंने तुमसे कहा, इस देश मे पुरुष कभी गलती नही करता, उसका कभी दोष नहीं होता यहाँ सिर्फ नारी गलती करती है। उसी का दोष होता है और नारी का दोष उस निरीह गाय के दोष जैसा है, जिसको, उससे पूछे बिना, उसकी इच्छा जाने बिना, कसाई के हाथ मे सौप दिया जाय। वह कसाई उसे एक झटके मे मार दे या तिल-

तिल कर जिबह् करे, भूखा मारे या चारे के भरे थान पर बाँध दे !

राज : लेकिन वे तो कसाई नही, वे तो एक चीटी तक को मारना पाप समझते है ।

पूरन : लेकिन पाँच हाथ की लड़की को बिना किसी सकोच के तिल-तिल कर मार सकते है ।

राज : यह तो मेरी किस्मत है, भैया ।

पूरन : (**झल्लाकर उठ खड़ा होता है ।**) किस्मत ..... किस्मत ......किस्मत ......! किस्मत क्या तुम्ही लोगो के लिए रह गयी है ? वकील साहब या प्रोफेसर मदन के लिए उसके तरकश मे कोई तीर नही ? (**सव्यंग्य**) लेकिन पुरुष के भाग्य के गुण तो ऋषियो ने भी गाये है, उसकी थाह तो देवता भी नही पाते । वह चाहे तो तीन-तीन शादियाँ करे और तीनो को कष्ट दे-देकर मार डाले; चाहे तो बिना कारण बीवी को छोड दे या न छोड़े; रखे या न रखे, चाहे तो बुड्ढा होते हुए भी जवान लड़की से शादी कर ले; अपग और अधमरा होते हुए भी सुन्दर और स्वस्थ लड़की ब्याह लाये...पुरुषस्य भाग्य दैवो न जानाति...लेकिन तुम्हे बताया है न, रानो, दूसरे देशो मे स्त्रियों ने भगवान के हाथ से अपना भाग्य छीन लिया है । उन्होने अपने अहम् को, अपनी खुदी को इतना बुलन्द कर लिया है कि उनके भाग्य को बनाने के पहले भगवान को उनसे पूछना पड़ता है । तुम लोग भी यदि अपने भाग्य को खुद अपने हाथ मे न लोगी तो जिन्दगी भर तिल-तिल कर जलती रहोगी ।

रानी : तुम एक बार जाकर प्रोफेसर मदन से पूछो तो पूरन । वे तो वकील साहब-जैसे निर्दयी और स्वार्थी नही ! राजो की ज़िन्दगी तबाह करने का उन्हे क्या अधिकार है ?

पूरन : (**कटुता से**) यहाँ के पुरुष का यह जन्म-सिद्ध अधिकार है, और स्त्री वही पतिव्रता है, स्वर्ग की अधिकारिणी है, जो पुरुष के इस अधिकार के विरुद्ध सपने मे भी आवाज़ उठाने की न सोचे । (**कुछ क्षण चुपचाप कमरे मे घूमता है ।**) मुझे डर था, राजो का जीवन सुखी न होगा । डर था, कही प्रोफेसर मदन शादी न कर ले ! (**कुछ क्षण चुपचाप घूमता है**) शादी से पहले मेरा और उनका अच्छा परिचय था, शादी के बाद वह गहरी दोस्ती में बदल जाना चाहिए था । लेकिन ऊपरी शिष्टाचार चाहे और भी बढ गया, में उनके निकट नही जा सका । (**कुछ क्षण चुपचाप घूमता है**) फिर मैंने देखा कि वे मेरी शकल तक से घबराते है, तब मेरा माथा ठनका था और मैंने पिता जी को इशारे से कहा था, लेकिन उनका खयाल था कि प्रोफेसर मदन की उपेक्षा का कारण मेरी आवारागर्दी है । (**दर्द से हँसता है ।**) मै जाऊँगा ज़रूर, लेकिन जब वे दूसरी जगह शादी कर रहे है तो कहने-सुनने से लाभ ? फिर जो एक-आध प्रतिशत चाँस रह गया होगा, उसे पिता जी बिगाड़ देंगे । दिल के मामले मे जोर-जबर्दस्ती नही चला करती, न ही पैसे का लोभ-लालच वहाँ ठहरता है । और पिता जी दोनों के अतिरिक्त किसी तीसरी बात मे विश्वास नहीं रखते । वकील साहब पैसे के लोभ में तुम्हें ले जा

सकते हैं, लेकिन प्रोफेसर मदन पर लोभ-लालच का कोई असर नही हो सकता ।

[**चुपचाप खिड़की मे जाकर बाग के शून्य मे देखने लगता है, कमरे में दर्द-भरा सन्नाटा छाया रहता है ।**]

पूरन : (**कुछ चौककर**) अरे, यह क्या वकील साहब आ रहे है ?

राज : (**तख्त पर सहसा उठते हुए**) त्रिलोक जीजा जी ?

रानी : साथ कौन है, वृन्दाबन चाचा ?

पूरन : नही, कोई उनका दोस्त लगता है ।

राज . जरूर जीजी को लेने आये है । पिता जी बहुत दिनो से कोशिश कर रहे थे ।

रानी : पूरन, उन्हें दरवाजे से लौटा दो, मै नही जाऊँगी !

पूरन · तुम लोग अन्दर चलो, मै देखता हूँ ।

रानी : चलो, राज ।

राज : क्या करती हो जीजी ? यहाँ मान-अपमान नही चलता ।

रानी : चलता है ! तू चल, अन्दर चले !

[**उसे सहारा देकर अन्दर ले जाती है, पूरन कौच में धँस जाता है और बेपरवाही से समाचार-पत्र उठा लेता है । तभी कॉल-बेल बजती है । वह उठ कर बाहर जाता है । कुछ क्षण बाद पूरन के आगे-आगे त्रिलोक प्रवेश करता है । पूरन के माथे पर चिड़चिड़ाहट के आसार और भी बढ़ गये है । प्रकट है कि उसने त्रिलोक का**

स्वागत नहीं किया, पर त्रिलोक उसके स्वागत की परवाह किये बिना अन्दर चला आया है।]

त्रिलोक : (**खोखली-सी हँसी के साथ**) बडे तीर-कमान चढा रक्खे है माथे पर, किसी से लड के बैठे हो ? (**आकर कौच मे धँस जाता है।**) पिता जी और रानो तो सब ठीक है न ?

पूरन : आप अपनी कहिए वकील साहब, कैसे कष्ट किया ?

[**सामने कौच के बाजू का सहारा लेकर खड़ा हो जाता है।]**

त्रिलोक . (**खोखला-सा ठहाका लगाते हुए**) एक ही साल मे भूल गये हमे ? न जीजा जी, न भाई साहब...वकील साहब ! (**फिर हँसता है।**) मैने कहा न, कि तुम ज़रूर किसी से लड के बैठे हो।

पूरन . एक ही शहर मे रहते हुए और इतने निकट होते हुए जब आप भूल सकते है तो हमारी याद से क्यो शिकायत करते है। कहिए, कैसे कृपा की ?

त्रिलोक : रानो कहाँ है ?

पूरन : कहिए ?

त्रिलोक : तुम तो भाई लडते हो।

(**पूरन कोई उत्तर नहीं देता।**)

— . आज इतवार था, मैने सोचा कि पिता जी से और आप लोगो से मिलता आऊँ।

पूरन : (**सव्यंग्य**) बडी कृपा की ! पर साल मे तो बावन इतवार आते है।

त्रिलोक : (**गम्भीरता से**) मैं तो बहुत दिनो से आने की सोच रहा था, लेकिन एक तो काम बढ़ गया है, दूसरे माता जी की तबीयत कुछ गडबड़ हो गयी । वे ठीक हुईं तो आशा को बुखार आ गया । उसकी हालत सुधरी तो पिता जी और बड़े भाई पड़ गये । कचहरी, मुवक्किल, डाक्टर, कम्पाउण्डर, बस इसी चक्कर मे रहा ।

पूरन : (**व्यंग्य से हँसते हुए**) आपने नाहक यहाँ आने की सोची !

त्रिलोक क्या मतलब ?

पूरन : (**उसी तरह हँसते हुए**) न आप यहाँ आने की सोचते, न आपका घर अस्पताल बनता ।

त्रिलोक . (**खिन्नता से हँसते हुए**) नही-नही, यह बात नही। मौसम बदल रहा है, सारा शहर बीमार पड़ा है, हमारे घर मे तो अब भी चार आदमी पड़े है । मँझली भाभी और बड़े भाई के लड़के और......

पूरन : बड़ी बाधाओं को पार करके आये आप यहाँ, कैसे आपको धन्यवाद दे !

[**दोनों एक दूसरे की ओर देखते है । त्रिलोक समझ नहीं पाता कि पूरन गुस्से मे है अथवा यों ही, उसका टखना खींच रहा है और वह स्वयं गुस्सा हो या हँसे**]

— : आपको यहाँ आने के बदले बीमारो की तीमारदारी करनी चाहिए थी !

त्रिलोक . (**उसके व्यंग्य को समझते, लेकिन नज़र-अन्दाज़ करते हुए ज़रा हँसकर**) अरे भाई, ज्वाइंट फेमिली मे जो आदमी तीमारदारी पर रहता है, वह फिर और कोई काम नही कर पाता। रानो जब से आयी, न उसने कोई खबर दी और न मैं ही आ सका, आज सोचा पता करूँ, बात क्या है ?

(पूरन कोई उत्तर नही देता।)

—— : (**उठ कर कमरे मे घूमते और हाथ धोने के अन्दाज़ मे हाथ मलते हुए**) जिन घरो मे माँ-बाप, भाई-भाई, देवरानियाँ-जेठानियाँ और ननदे-भौजाइयाँ इकट्ठी रहती है, वहाँ, तुम जानो, एक न एक झगडा-टटा लगा ही रहता है—इसने कुछ उसे कह दिया, उसने कुछ इसे कह दिया; सास ने बहू को बोली मारी, बहू ने सास को ताना दिया; देवरानी जेठानी से रूठी, ननद भौजाई की बात का बुरा मान गयी—आठों पहर और चौबीसों घड़ी प्लासी की लड़ाई ठनी रहती है। बड़ा सबर और सन्तोष चाहिए ज्वाइंट फेमिली मे गुजारा करने को। रानो बड़ी हस्सास और भाव-प्रवण है, जरा-सी बात उसे लग जाती है। पिछली बार वह कुछ रूठ-कर आ गयी थी, मैंने भी सोचा कि जब तक एक ही घर मे इकट्ठे रहना है, रोज़ की चख़चख़ मे उसे क्या लाकर रक्खू। (**धीमे भेद-भरे स्वर मे**) लेकिन अब मैं अलग होने की सोच रहा हूँ।

पूरन (**व्यंग्य को मुस्कान मे छिपाते हुए**) बड़ी कुर्बानी करने जा रहे है रानो की खातिर आप !

त्रिलोक (यह सोचकर कि वह बात बनाने मे सफल हो रहा है, कद्रे जोर से) नही यह बात नही ! जिस दिन से हमारी शादी हुई है, मै इस बात को महसूस कर रहा हूँ । आज का कौन युवक नही चाहता कि अपनी बीवी को साथ लेकर चन्द दिन आज़ादी से रहे, जब चाहे उठे, सैर को जाय, ताश खेले या सिनेमा देखे, लेकिन गर्दन तक दलदल मे धँसे आदमी को बाहर निकलने के लिए उतना जोर नही लगाना पडता, जितना ज्वाइट फेमिली के कीचड मे टखनो तक धँसे आदमी को। वह एक बाधा को पैर से झटक कर बढता है कि दस बाधाएँ उसके दूसरे पैर से चिमट जाती है। ज्वाइंट फेमिली का दुर्ग कम दुर्गम नही भाई, मा-बाप के एहसान, भाई-बहनो की मुहब्बत, कुल की लाज, पुरखो का नाम, गत की महत्ता और आगत की सम्मिलित-शक्ति के सपने—न जाने कितनी दीवारे ज्वाइट फेमिली की चारदीवारी को तोड़ भागने वाले के रास्ते मे आ खडी होती है ।

पूरन ज्वाइंट फेमिली से निकलने के ही लाभ नही, रहने के भी बडे लाभ है वकील साहब । यह ठीक है कि कई भावुक इसके ठूठ को व्यर्थ ही पानी दिया करते है, लेकिन जहाँ पेड़ हरा भरा और छायादार है, वहाँ कई बेकार युवक, छोटे-मोटे क्लर्क, और महत्त्वाकाक्षी नये वकील इसकी छाया का आनन्द लेते है ।

त्रिलोक : (सहसा मुड़कर) नये वकील......तो यह व्यग्य मुझ पर है !

पूरन : नही, आप तो पेड की छाया मे रहकर बडा त्याग कर

रहे थे, और अब उसे छोड रहे हैं तो बड़ा त्याग कर रहे हैं---आप साक्षात त्याग के अवतार हैं ।

त्रिलोक : (**जिसके सन्तोष का प्याला भर जाता है, सहसा मुड़कर**) नही, त्याग तो तुम कर रहे हो, हम क्या करेंगे ! क्या तुम अपनी जिन्दगी के मानदड से दूसरों को नापते हो। मैं यदि पेड के फल खाता हूँ तो उसे दो बाल्टी पानी भी देने का प्रयास करता हूँ । तुम फल खाते हो और उसकी जड को खोखला करते हो। मेरे बाप को मुझ से शिकायत हो सकती है, पर वे मेरी प्रशसा भी करते हैं । कभी अपने बाप से अपने बारे मे भी कुछ पूछा है ? जरा अपनी शक्ल तो आइने मे देखो ! क्या राय साहब ताराचन्द के सुपुत्र लगते हो ? कचहरी मे कही मिल जाओ तो मित्रो से कहना मुश्किल हो जाय कि तुम मेरे साले हो। शरीफ आदमियो मे बैठो तो लोग अपनी जेबो पर हाथ रख ले।

पूरन : (**हँसकर**) मेरी बात छोडिए वकील साहब, लेकिन आप पानी देते-देते क्या थक गये, जो अब पेड को छोड़ कर भागना चाहते हैं ?

त्रिलोक : (**क्रोध से**) तुम से बात करना बेकार है ! तुम्हारा न कोई धर्म है न ईमान । तुम्हारे दिल मे न छोटो के लिए स्नेह है, न बडो के लिए इज्जत। बात करने की तुम्हे तमीज नही । आवारा लोगो की सगत ने तुम्हे बिल्कुल आवारा बना दिया है । तुम एक दिन जेल मे जाकर अपने बाप का नाम रौशन करोगे, मैं आज यह भविष्यवाणी करता हूँ ।

[**उछलता हुआ कौच पर बैठता है। लेकिन जैसे वहाँ काँटे बिखरे हों, फिर उछलकर उठता है।**]

— . तुम रानो को भेजो !

पूरन (**उसकी बात अनसुनी करके**) और मैं भविष्यवाणी करता हू कि आप एक दिन, यदि इसी तरह धर्म ईमान का ख़याल रखते और निःस्वार्थ अपने कर्तव्य का पालन करते रहे तो निश्चय ही दलालो और अपनी वकील-सुलभ-चतुराई और झूठ की मदद से, शहर ही नही, प्रान्त के प्रसिद्ध एडवोकेट बनेगे । कोई बडी बात नही यदि आप एक दिन जज की कुर्सी पर जा बैठे (**सहसा मुड कर**) लेकिन इस वक्त आप तशरीफ़ ले जाइए, राजो की तबीयत ठीक नही और रानो उस की तीमारदारी कर रही है ।

त्रिलोक (**सहमा उठकर और अन्दर जाने को उद्यत होते हुए**) क्या राजो की तबीयत खराब है ? कहाँ है वह ? चलो तो......

पूरन · (**उसका रास्ता रोककर**) आप कष्ट न कीजिए, वह आपसे मिलने की स्थिति मे नही है ।

त्रिलोक : (**हताश होकर कुर्सी में धँसते हुए**) पिता जी कहाँ है ?

पूरन आपके हमजुल्फ[१] की मिजाज़-पुरसी[२] को गये हुए हैं ।

---

१. हमजुल्फ—साली का पति—साढू

२. मिज़ाज-पुर्सी—बीमार की खबर लेना। लेकिन इसका दूसरा मतलब पीटना भी है।

त्रिलोक : (घबराकर उठते हुए) क्यों, प्रोफेसर मदन को क्या हुआ ?

पूरन . आप ने अभी कहा न, मौसिम बदल रहा है, घर-घर बीमारी पड़ी हुई है ! अच्छा तो मुझे आज्ञा दीजिए ।

त्रिलोक : तुम जरा रानो को एक मिनट के लिए भेज दो, मुझे उससे ज़रूरी बात करनी है ।

पूरन : रानो नही आ सकती ।

त्रिलोक . तुम जाकर कहो तो, मुझे बड़ी जरूरी बात करनी है उससे । दस काम छोड़ कर मै आया हूँ ।

पूरन . मै तो समझा था कि इतवार के कारण आप केवल दर्शन ही करने आये है ।

त्रिलोक : (सक्रोध) पूरन !

पूरन . (**उसकी आवाज़ की थरथराहट और उसकी आँखों की लपलपाहट की ओर ध्यान दिये बिना**) अभी भरा नही मन आपका रानो से जरूरी बाते करते ?

त्रिलोक वह मेरी बीवी है और अपनी बीवी से. . . .

पूरन बीवी थी ।

त्रिलोक · क्या बकते हो !

पूरन : मै ठीक अर्ज करता हूँ !

त्रिलोक (**सहसा घबराकर**) और. . .और किस की बीवी है वह ? . . .किस से शादी की है उसने ? . . किस से शादी कर रही है वह . . . .हिन्दू कानून में दूसरी शादी. . . . . .मै पूछता हूँ, पिता जी ने कैसे. . . . . .वृन्दाबन कहते थे. . . . . .

पूरन : (चुपचाप त्रिलोक की घबराहट को देखता है और मुस्कराता है ।)

त्रिलोक : (कुछ क्षण पूरन की ओर देखकर सहसा आश्वस्त होकर हँसते हुए) तुम मुझ से हँसी करते हो पूरन । जाओ रानो को भेजो । तुम नही जानते तुम ने अपनी बहिन के सम्बन्ध मे क्या बात कह दी है । हिन्दू नारी सपने मे भी वैसी बात नही सुन सकती ।

पूरन सपने मे भी ! (व्यंग्य से हँसता है ।) शायद आप हिन्दू नारी के सपने भी जानते है । क्योकि उसकी कोमल भावनाओ को एक्स्प्लाइट (Exploit) करने* के लिए युग-युग से उसे जो पाठ पढाया गया है, वह आपका जाना-माना है और आप समझते है कि आप चाहे जो अत्याचार करे, वह सती की रस्म बन्द होने के बावजूद सती, पुरुषो के साधुता छोड देने पर भी साध्वी और पति के कर्तव्य-च्युत होने के बावजूद पति-व्रता बनी रहेगी । लेकिन वकील साहब, आज हिन्दू नारी बदल रही है, हिन्दू मुसलमान क्या, भारत की नारी-मात्र बदल रही है, उसके सपने बदल रहे है, आप आज की नारी के सपने तो क्या, उसकी भावनाओ को भी नही समझते !

त्रिलोक तो यह आग तुम्हारी लगायी है ! मै न समझता था कि रानो मे उतनी तुनक-मिजाजी क्यो है, क्यो वह नाक पर मक्खी नही बैठने देती और घर मे ज़रा झगडा होता है तो मैके उठ भागती है । जहाँ चार बरतन

*एक्स्प्लाइट करने = अनुचित लाभ उठाने ।

होते हैं, जरूर खनकते हैं; जहाँ चार औरतें होती हैं ज़रूर लड़ती हैं। कौन सा घर है जिसकी औरतों में ताने-तिश्ने, लड़ाई-झगड़ा, मान-मनौवल नहीं होता ? लेकिन दर्द के डर से कोई नाक-कान तो बिधवाना नहीं छोड़ देती।

पूरन · लेकिन नाक कान बिधवाना क्या ज़रूरी है ? औरत पशु के दर्जे को पार कर गयी है और इसलिए यदि नुकेल के लिए नाक कान नहीं बिधवाना चाहती तो क्या बुरा करती है ? बेकार का दर्द वह क्यों पाले ?

त्रिलोक यह दर्द बेकार का नहीं, इस पर हमारी गृहस्थी कायम है। अब तो खैर हमारे घर में बड़ी आजादी है, पर जब मेरी माँ आयी थी तब .....आज हम बात भी करते हैं तो हमारी जबान खींची जाती है, मेरी दादी तो माता जी को बेतरह पीट देती थी और पिता जी उन्हें रोकने के बदले एक-आध थप्पड़ माता जी के ही जड़ देते थे। यदि वे रानो की तरह घर छोड़ने लगतीं तो चल चुकती पिता जी की गृहस्थी। पर यह उनके सबर-सन्तोष का फल है कि आज हमारा घराना शहर के प्रतिष्ठित घरानों में समझा जाता है।

पूरन : तो रानो को पीटने की हसरत रह गयी आपको !

त्रिलोक : मुझे पीटने की हसरत क्या होती ! वह तो बात से बात निकल आयी। मैं बच्चा नहीं, जो यह न समझूं कि पिता जी के और हमारे जमाने में फर्क है। मेरा बस चले तो रानो को एक बात भी न सुननी पड़े। उसकी भावनाओं को जरा सी भी ठेस न लगे, लेकिन कई बार

जब घर मे झगड़ा हो जाता है तो बीवी के कारण माँ को और माँ के कारण बीवी को चार बाते सुननी पड़ती है। गुस्सा बीवी पर होता है, निकलता है माँ पर। इसी तरह माँ का गुस्सा अनचाहे बीवी पर निकल जाता है। बहुएँ समझदार होती है तो बात का बतगड नहीं बनाती और चुपचाप अपने काम मे लगी रहती है। मैं रानो से यही बात कहने आया था कि......

पूरन : रानो यह बात पहले भी सुन चुकी है।

त्रिलोक · लेकिन मै तो इस सबका झगड़ा ही निबटा रहा हूँ मैंने फैसला कर लिया है कि कचहरी रोड पर एक फ्लैट लेकर रानो को वहाँ रक्खू—न सास ननद का झगड़ा, न देवरानी जेठानी का टण्टा, न रहे बास न बजे बाँसुरी।

पूरन . रानो को तो सास ननद से नही, आपमे शिकायत रही है। अब वह सारी गाथा यहाँ क्या गायी जाय।

त्रिलोक · उसको महज भ्रम है। मै उसकी जितनी इज्जत करता हूँ, किसी की नही करता, फ़साद की जड़ तो ज्वाइट फेमिली है।

पूरन : लेकिन रानो ने फैसला कर लिया है कि वह आपको यह सब कष्ट न देगी। आप अपनी जिन्दगी जिये, वह अपनी जियेगी। यही बात आपने उससे कही भी थी।

त्रिलोक · गुस्से में कही गयी बात का......

पूरन : आप थूका चाट सकते है, हम नही......

त्रिलोक : हम कौन ? पिता जी ने तो मुझे दस सदेश भेजे है कि

रानो उदास है, मै उसे ले जाऊँ ! तुम तो ऐसी बात करते हो जैसे रानो तुम्हारी बहिन नही, बेटी है ।

पूरन : छोटी बहने बेटियो के बराबर होती है ।

त्रिलोक लेकिन पिता जी से ज्यादा तुम उसे प्यार करते हो ?

पूरन : हॉ, क्योकि वह उनकी बेटी है और मेरी छोटी बहिन ।

त्रिलोक . (**क्रोध और व्यंग्य से**) 'खुद मियॉ फजीहत, दीगरॉ नसीहत', अरे भाई, खुद किसी लायक हो लो, फिर दूसरे की जिन्दगी मे टॉग अडाओ ।

पूरन . आपके घर जिन्दगी सुधारने न जायेगे, इसका विश्वास रखिए ।

त्रिलोक : (**क्रोध से चिल्लाकर**) लेकिन तुम होते कौन हो हमारे बीच पडने वाले ? मै रानो को लेने आया हूँ । बिना उसे लिये नही जाऊँगा ।

पूरन : (**सव्यंग्य**) अच्छा तो आप रानो को लेने आये है, मै तो समझा था......

त्रिलोक : (**और भी ज़ोर से चिल्लाकर**) हटाओ जी, मै खुद रानो से बात करूँगा ।

(**चिल्लाता हुआ खुद अन्दर की तरफ़ जाता है ।**)

त्रिलोक : रानो, रानो !

(**रानो प्रवेश करती है ।**)

रानी : (**क्रोध से लेकिन संयम भरे स्वर मे**) आप चिल्ला रहे है ? राजो की तबीयत ठीक नही ।

त्रिलोक : मै आध घटे से पूरन को समझा रहा हूँ, लेकिन......

पूरन : मै वकील साहब से अर्ज़ कर रहा था कि आप ने व्यर्थ कष्ट किया. .. ...

रानी : अच्छा-अच्छा, शोर न मचाइए। राजो की तबियत ठीक नही, कुछ ही देर पहले वह बेहोश हो गयी थी।

त्रिलोक · क्यों-क्यो, क्या हुआ राजो को ?

रानी : उसकी छोड़िए, आप कहिए, कैसे कष्ट किया ?

पूरन : साल भर मे ईद का चाँद निकलता है न, सो वकील साहब भी उसी ईद के चाँद सरीखे उदय हुए है।

त्रिलोक : मै पहले कैसे आता ? जिस हालत मे तुम आने को मजबूर हुई थी, उसी मे तुम्हे फिर क्या ले जा कर रखता ? साल भर तक हालत सुधारने की कोशिश करता रहा।

रानी · हालत सुधारने की ? कैसी हालत ?

त्रिलोक : अब तुम्हे न सास के ताने सुनने पड़ेगे, न ननद के, न देवरानी के, न जेठानी के. ....

रानी : लेकिन आप के ताने ? अपने मन की स्थिति आप कैसे सुधारेगे ?

त्रिलोक : मै उस वातावरण से निकल जाऊँगा।

रानी (**तिक्त हँसी के साथ**) और उस वातावरण से निकल आने के साथ, मेरे बारे मे आपको जो शिकायते है, वे दूर हो जायेगी ! (**कटुता से हँसती है**) वातावरण आपका बदलेगा, अच्छी मै हो जाऊँगी !

त्रिलोक : तुमने मुझे कभी नही समझा, रानो। मुझे तुम से कभी शिकायत नही रही।

रानी : कभी नही रही ? मैंने तो सिवा शिकायतो के अपने लिए आप से कुछ और पाया ही नही !

त्रिलोक वे शिकायते तो रोज-रोज़ की चख़चख़ की नतीजा थीं जो घर मे आठों पहर मची रहती थी।

रानी : मेरे कारण ?

त्रिलोक . अरे नहीं, नही, नही, तुम्हारे कारण क्यो ?......तुम्हारे कारण क्यो ? मैंने कब कहा कि तुम्हारे कारण ! वह बात यह है......मैं पूरन से कह रहा था अभी कि ज्वाइट फेमिली मे वातावरण कुछ ऐसा दूषित रहता है है कि अच्छा भला आदमी पागल हो जाता है। माँ की खातिर तुम पर और तुम्हारी ख़ातिर कई बार माँ पर झुंझला उठता था।

रानी : मैंने तो कभी माँ पर आपको झुंझलाते नही देखा। माँ को खुश करने के लिए मुझ पर अलबत्ता आप सदा झुझलाते रहे।

त्रिलोक : तुम्हारे सामने नही, लेकिन......

पूरन : और माँ ही को खुश करने के लिए आप ने इस को घर से निकाल दिया ?

त्रिलोक : निकाल दिया ? यह तो स्वय आ गयी।

पूरन : आने को मज़बूर हुई।

त्रिलोक : ज्वाइट फेमिली का वातावरण ही ऐसा होता है कि हस्सास और भावुक के लिए वहाँ चार दिन भी रहना मुश्किल है। रानो कितनी भावुक है, मैं जानता हूँ। मेरा

यदि कोई दोष है तो यह कि जब यह आने लगी तो मैंने रोका नही ।

पूरन : निहायत बेदर्दी से नौकरानी के साथ भिजवा दिया । भाई बहिनों वाले इतने बड़े घर मे केवल एक नौकरानी के साथ !

त्रिलोक · मै तो स्वयं आता । पर इसे मेरी शकल से चिढ़ थी ।

रानी : (**तिक्त हँसी के साथ**) मुझे आपकी शकल से चिढ़ थी या आपको मेरी शकल से ?

त्रिलोक : (**खोखली हँसी के साथ**) अब मै कहता हूँ रानो, कि यही तुम गलती करती हो । तुम नही जानती, मै तुम्हारी कितनी इज्जत करता हूँ ।

रानी : (**उसी तिक्त मुस्कान से**) इज्ज़त ?

त्रिलोक : हॉ, हॉ, इज्ज़त ! मै दिल मे हमेशा तुम्हारी इज्ज़त करता रहा हूँ, यह अलग बात है कि घर वालो के कारण तुम्हे ताने देने को विवश हो जाता था ।

पूरन : (**सव्यंग्य**) वे ताने तुम्हारे लिए नही, वे तो मॉ, भाभियो या बहनों के लिए थे ।

त्रिलोक : (**अपनी रौ मे पूरन के व्यंग्य की ओर ध्यान दिये बिना**) यही तो मै कह रहा था । कई बार ऐसा होता है कि मॉ वच्चे को पीटती है, पिता इसे पसन्द नही करता, लेकिन बीवी से कुछ कहने के बदले उसके सिर चढ़ कर खुद भी बच्चे को दो चार झॉपड़ लगा देता है । मेरी बेबसी भी कुछ वैसी ही थी ।

[**अपने पति के इस झूठ पर क्षण भर के लिए क्रोध से**

रानो के तेवर चढ़ जाते हैं, पर दूसरे क्षण उसकी आंखें पूरन से चार होती है, जो अपने जीजा के इस झूठ पर हँस रहा है । सहसा रानो भी क्रोध के बदले मुस्करा उठती है, पर तत्काल इस व्यंग्य-भरी-मुस्कान को छिपा लेती है ।]

रानी (बड़े भोले अन्दाज मे) मै हैरान हूँ, यह बात पहले मेरी समझ मे क्यो नही आयी !

त्रिलोक · (किञ्चित उल्लास से) यही तो मै कहता हूँ । तुमने मेरी बेबसी को कभी नही समझा । जब मै चिल्ला-चिल्ला कर तुम्हे डॉटता था, तुम्हे ताने देता था तो मैं दर-असल अपनी मॉ, भाभियो और बहनो को डाँटता था—अनचाहे अपने बच्चे को पीटने वाले पिता की तरह मै उन सबका गुस्सा तुम पर निकालता था । मुझे दुख होता था कि वे तुम्हे क्यो दहेज की कमी, या नजाकत, या नफासत के ताने देती है ।

रानी (और भी भोलेपन से ओठों पर आती तिक्त मुस्कान को छिपाते हुए) मैने कभी यह नही समझा । आप ने मुझे कभी नही बताया ।

पूरन · तुम नही जानती, कैसे माएँ बहुओ को समझाने के लिए अपनी लड़कियो को डॉटा करती है । वही बात वकील साहब की है । ये मॉ बहनो को समझाने के लिए तुम्हें डॉटा करते थे । ।

त्रिलोक : तुम मजाक करते हो पूरन । लेकिन बात तुमने ठीक कही है । मेरी स्थिति बिल्कुल ऐसी ही है ।

रानी : (उसी अन्दाज में) पर मै कैसे जानती ? आपने

भी तो मुझे कभी नही समझाया, कभी अपने दिल की बात नही बतायी, कभी नही कहा कि......

त्रिलोक : (**और भी जोश से**) अब मैं तुमसे क्या कहता, क्या समझाता ? मैं खुद अपने-आप पर झुझलाता था, घर के वातावरण पर झुझलाता था, झुंझलाता था कि यदि उन्हें दहेज उतना प्यारा था तो क्यों पहले उन्होंने राय साहब से तय नही, किया......

पूरन : और आप उन्हे समझाने के बदले रानो को वही दहेज की कमी के ताने देते थे ! रानो पर ही अपनी झुझ-लाहट निकालते थे !

त्रिलोक : (**अप्रतिभ हुए बिना**) रानो पर ही....क्योकि रानो को मै अपने से विलग नही समझता। रानो पर मेरा झुंझलाना स्वयं अपने आप पर झुझलाना था ।

पूरन : (**ज़ोर से ठहाका मारते हुए**) आप ज़रूर एक दिन हाईकोर्ट मे अपनी धाक जमायेंगे । बिगड़ी बात बनाना आप खूब जानते है ।

त्रिलोक बात बिगडी बनाने की नही, मैं यथार्थ स्थिति की बात कर रहा हूँ ।

रानी . (**उसी भोले स्वर मे**) आपने क्यों न मुझे वहाँ समझा दिया ? मै साल भर यहाँ जलती-भुनती रही । यदि मुझे इस बात का पता चल जाता तो मैं सबके ताने सह लेती और सबर-सन्तोष से दिन काट लेती ।

त्रिलोक : मैं हरगिज-हरगिज न चाहता था कि तुम उस दूषित वातावरण मे रहो । मैने इसीलिए तुमसे वहाँ कुछ नहीं कहा ।

[इस बात को सुनकर रानो के माथे पर फिर बल पड़ जाते है, पर वह बड़े यत्न से अपने क्रोध को दबा कर स्वर को और भी भोला, और भी अनजान बना लेती है।]

रानी . अब मै वहाँ गयी तो कभी न झुझलाऊँगी।

त्रिलोक तुम्हें वहाँ जाने की बिलकुल जरूरत नही, मैंने अलग रहने का फैसला कर लिया है।

पूरन : वकील साहब तो पेड को पानी देते-देते ऊब गये है।

रानी : (**पूरन की बात अनसुनी करके वकील साहब से**) अलग कहाँ ?

त्रिलोक : मै कचहरी रोड पर एक फ्लैट ले रहा हूँ, हफ्ता दस दिन तुम्हे पुराने घर मे रहना पडे तो पड़े, इससे अधिक एक दिन भी मै तुम्हे वहाँ न रहने दूगा।

रानी : **(सामन छत पर जैसे किसी स्वप्न संसार मे विचरते हुए)** कचहरी रोड के पास तो कम्पनी बाग है न !

त्रिलोक : हाँ-हाँ, हम सुबह-शाम वहाँ सैर को जाया करेंगे।

रानी . कैपिटल सिनेमा भी तो कचहरी रोड पर है !

त्रिलोक : और अब वहाँ हिन्दी फिल्म भी आने लगे है, छै के शो मे हमेशा हिन्दी फिल्म आते है। इसी हफ्ते 'राग रग' आया है और 'राग रग' मे गीता बाली इतना सुन्दर अभिनय करती है कि तुम मुग्ध हो जाओगी। पुराने घर से सिनेमा जाना तो यहाँ से दिल्ली जाने के बराबर है। यहां तो हफ्ते मे दो बार सिनेमा देखने जाया करेगे।

रानी : कचहरी रोड पर तो हमारा बँगला भी है, हम वही

उठ जायेंगे। मै राजो को वहाँ बुला लूगी, उसका दिल बहल जायगा। मेरी सहेलिया, जो वहाँ पर भी न मार सकती थीं, यहाँ बेधड़क आया करेगी !

त्रिलोक . (**खुश होकर**) और मेरे दोस्त बेधड़क आयेंगे और हम कार मे पिकनिकों पर जाया करेंगे।

रानी . (**चौंक कर और सहसा पलट कर**) कार, आपने कार कब ली?

त्रिलोक (**सहसा घबरा जाता है**) वह......वह......कार... वह कार तो रायसाहब अपने-आप दे देंगे, वह तो शादी पर ही उन्होंने देने को कहा था। हम अलग रहे नही, उन्होंने कार और मकान दिया नही। अब हम अलग रहेंगे तो वे अपने आप हमको मोटर और मकान दे देंगे।

(**पूरन जोर से ठहाका मारता है।**)

रानी : तो आप उस मोटर और मकान के लिए अलग हो रहे है ! मै भी सोच रही थी कि आज रानो पर इतना मोह क्यो उमड़ आया......

त्रिलोक : (**और भी घबराकर**) नही......नही......वह तो......मै तो...अलग होने की शुरू से सोच रहा हूँ। तुमने मकान की बात की तो मेरे मुह से कार की बात निकल गयी। कार और मकान तो पिता जी तुम्हारे नाम कर ही रहे है।

रानी : (**चितवन पर बल पड़ जाते हैं।**) आपको कैसे पता चला?

त्रिलोक (**खोखली सी हँसी हँस कर**) हमको किस बात का पता नही चलता, हम वकील है। शहर की राई-रत्ती खबर हम तक आ जाती है। वे तो वसीयत मे यह बात लिखने जा रहे है। चचा वृन्दाबन कहते थे।

रानी . (और भी क्रोध से) क्या कहते थे चाचा वृन्दाबन ?

त्रिलोक वे तो इसी बीच मे मेरे पास कई बार आये। तुम्हे ले जाने के लिए कहते थे, पर मैंने कहा कि जब तक मैं अलग नही हो जाता, मै उसे यहां लाकर हरगिज उसका अपमान नही करा सकता।

पूरन (ज़ोर से ठहाका मारता है।) आपको रानो के मान-अपमान का कितना खयाल है ? शायद इसके अपमान ही के खयाल मे आप ने झूठे-सच्चे साल भर इसकी खबर नही ली !

त्रिलोक : मै लगातार कोशिश करता रहा ......

पूरन (बात काट कर)......कि इसकी खबर लेने की कोशिश करे !

त्रिलोक : (खिसियाना हो कर).....कि अलग मकान की व्यवस्था होते ही इसे लेने आऊँ।

पूरन . और जब चचा वृन्दाबन ने आपको पिता जी की वसीयत की खबर दी तो आपने झट इसकी व्यवस्था कर ली।

त्रिलोक : व्यवस्था कर ली। पिता जी कितने नाराज है मेरे अलग होने की खबर सुन कर। यह तुम क्या जानो ? और फिर मकान मिलना आजकल कोई आसान है...वह भी कचहरी रोड पर, कोशिश कर रहा हूँ कि अच्छा-सा फ्लैट मिल जाय।

रानी · (सहसा चीख कर) मुझे न आपका फ्लैट चाहिए, न पिता जी का मकान। आप जाइए !

त्रिलोक · (इस अप्रत्याशित आघात से चौक कर) रानो !

रानी : आप जाइए, मेरी तबियत ठीक नहीं। (**पूरन से**) चलो पूरन, हम उधर बैठे, राजो अकेली है।

त्रिलोक : (**स्तम्भित**) रानो !

रानी : (**क्रोध से**) मैं इतनी देर से चुपचाप आपकी ये चिकनी चुपडी बाते सुन रही हूँ। आप क्या मुझे मूर्ख समझते हैं ? क्या आपका खयाल है कि उस अपमान, निरादर और घोर मानसिक यत्रणा के बाद जो आपने दो बरस मुझे दी, मैं इतनी भोली हूँ कि आपकी इन झूठी-मीठी बातो के भुलावे मे आ जाऊँगी और समझ लूंगी कि आप एकदम पत्थर से मोम हो गये हैं; कि आपको उस रानी मे, जिसे आपने घर से निकाल दिया था, इतने गुण नजर आने लगे हैं कि आप उसे लेने दौडे आये हैं; कि आपको अचानक उससे इतना मोह हो आया है कि आप अपने माँ, बाप, भाई-बहनो को नाराज़ करके उसे लेकर अलग होने को तैयार हो गये हैं ? मैं आपको खूब जानती हूँ, आपकी मोह-ममता को समझती हूँ। (**सामने शून्य मे देखते हुए धीमे स्वर मे**) कभी जब मैंने आपको समझा, जाना न था तो मैं सोचा करती थी कि मैं अपने पति के साथ छोटी-सी अलग दुनिया बसाऊँगी, जिसमे हम अपना जीवन जी सकेंगे। अपने सपनो के अनुसार छोटी-सी दुनिया बसा सकेंगे, लेकिन मेरा वह सपना कब से मरीचिका सिद्ध हो चुका है (**धीमे से**) आपने अलग रहने की बात कही तो क्षण भर को मुझे उसी सपने की याद हो आयी। (**तिक्त हँसी के साथ उसी व्यंग्य से**) लेकिन क्या मरीचिका ने कभी किसी की प्यास बुझायी है ? आप जाइए......पिता जी से मकान

लीजिए, मोटर लीजिए। मुझे उस मकान मोटर की जरूरत नही।

[**मुड़ कर तेजी से जाना चाहती है, कि मुरझाई हुई राज से टकरा जाती है, जो शायद उनकी बाते सुन कर चली आयी है।**]

राज : जीजी !

रानी अरे. तू क्यो इधर आ गयी उठ कर ?

राज जीजी, क्या करती हो, घर आये सौभाग्य को ठुकराती हो ?

रानी मै इस सौभाग्य की हकीकत खूब जानती हूँ।

राज (**त्रिलोक से**) जीजा जी, आप इसकी बात का गुस्सा न करे, मेरे कारण यह अपने आपे मे नही है।

त्रिलोक : (**आगे बढ़ कर**) क्यो राज, क्या हुआ तुम्हे ? तुम तो पहचानी नही जाती !

रानी चल, चल, इन्हें अपनी बिपदा सुनाने का कोई लाभ नही, ये सब एक सरीखे जालिम और निर्दयी है।

(**उसे लगभग ढकेलती हुई अन्दर ले जाती है।**)

त्रिलोक : (**पूरन से**) राजो को क्या हुआ ?

पूरन बेहोश हो गयी थी।

त्रिलोक : लेकिन क्यो ?

पूरन : आप बैठिए यहाँ, आप तो पिता जी से मिल कर ही जायँगे न, वे आपको बता देगे। मै ज़रा राजो को देखू !

[**चला जाता है । त्रिलोक हताश कौच मे धँस जाता है, बाहर काल-बेल बजती है । त्रिलोक उठता है ।**]

त्रिलोक . कौन है ?

बनवारी (**जरा-सा पर्दे से झाँक कर**) मै आ सकता हूँ ?

त्रिलोक यार माफ़ करना मै......

बनवारी तुम मूरख नम्बर वन हो, आध घटे से मै बागीचे मे टहल रहा हूँ और आप है कि......

त्रिलोक · अरे यार, सब मिस-फ़ायर हो गया ।

बनवारी मिस-फायर ?

त्रिलोक . तीर निशाने पर नही बैठा ।

बनवारी क्यो ?

त्रिलोक . वह तो बात ही नही करती ।

बनवारी : तुमने ज्यादती भी तो कम नही की !

त्रिलोक : लेकिन यार......

बनवारी लेकिन यार—मैने पहले ही कहा था कि ऐसे खाली हाथ मत जाओ, एक बढिया साड़ी, एक बढ़िया सा लाकेट और आवेजे लेते जाओ ।

त्रिलोक : मैने कहा कि जरा सुन-गुन ले लू । यह न हो कि चार पॉच सौ की चपत मुफ्त मे पड जाय । मोटर और मकान की बात वृन्दाबन ने कही थी, पर मै बिना पक्के पाँव अब के नही ले जाने का । जरा पंडित जी आते तो पता चलता, बहन भाइयो से मिल कर तो मालूम नही होता कि वृन्दाबन की बात सच है ।

बनवारी : तुम ब्राह्मण होकर भी बनिया हो। अब भी मेरा कहा मानो, चौक से एक बढ़िया साड़ी लो, सिविल लाइन्स से एक बढ़िया सा सेट। फिर आओ और देखो कि रूठी बीवो कैसे मनती है!

(दोनों निकल जाते हैं।)

(पर्दा गिरता है।)

——

तीसरा अंक

[पर्दा उठने पर बिजली पहलवान और फैक्टरी के दूसरे कर्मचारियो की भीड़ के आगे-आगे, पं० ताराचन्द वृजनाथ और शिवराम के साथ, आवेश मे बातें करते हुए प्रवेश करते है ।]

ताराचन्द : तुम टाग की बात कहते हो शिवराम, ब्रह्महत्या यदि पाप न होती तो आज विष्णु पडित के उस सिरफिरे लडके की गर्दन टूट चुकी होती । उसके घर क्या बहन और उसके बाप के घर बेटी नही क्या ? उसे शर्म न आयी राजो के ऊपर, सौत का ब्याह पढ़ाते ? उसकी यह टूटी टाग सदा उसे उसके पाप की याद दिलाती रहेगी !

[आकर धम्म से तख्त पर बैठ जाते है । उनके मित्र उनके आस-पास तख्त कौच इत्यादि पर बैठते है ।

बिजली पहलवान अपने साथियों के आगे दरवाजे की चौखट मे खड़ा रहता है ! बैठते ही ताराचंद सन्तू को आवाज देते है :]

ताराचन्द · सन्तू ओ सन्तू !

सन्तू (**जो भीड़ में पीछे खड़ा है, आगे बढ़कर**) जी सरकार !

ताराचन्द यह हुक्का ताजा कर ला।

सन्तू : जी अभी लाया ।

(**हुक्का उठाकर आँगन मे ले जाता है ।**)

ताराचन्द · मुझे विष्णु पडित का खयाल आ गया, बृजनाथ। हमारा-पुरोहित न सही, पर मेरे यहाँ पत्री-पोथा वही बनाता है। उसके ज्योतिष की मै कद्र करता हूँ, इकलौता उसका लड़का है, अगर मर जाता तो उसके साथ पडित भी मर जाता ।

बृजनाथ : लेकिन तुम्हे सबर से काम लेना चाहिए, ताराचन्द ! मुसीबत पर मुसीबत को बुलाना समझदारी का काम नही । उधर रानो की चिन्ता है, इधर राजो का जीवन खटाई में पड गया, ऊपर से तुम मामले-मुकदमे मे उलझ जाओ, यह कहाँ की बुद्धिमानी है ।

शिवराम : जलते घी पर पानी डालने के बदले हवा करोगे तो सब भस्मीभूत होकर रह जायगा ।

ताराचन्द : (**लगभग चिल्ला कर**) हो जाय भस्मीभूत ! मुझे कोई परवाह नही ! उस पाजी की यह मजाल कि पडित ताराचन्द की लडकी के ऊपर सौत लाये ?

बृजनाथ : लेकिन इसमे उसका क्या दोष है ? मजा मारे गाजी

मिया और मार खाय डफाली । करे गंगाराम और भरे जमुनादास ? दोष तो तुम्हारे जमाई का है ।

ताराचन्द उसे, तुम्हारा खयाल है, मै सस्ता छोड़ दूंगा ? मेरी लड़की को यो जलाकर वह चैन की बसी बजा सकेगा ? दो चार दस हजार की बात होती तो मै उसके मुह पर मार देता । उससे तो त्रिलोक ही अच्छा निकला । कुछ कहे सुने बिना उसने जाकर दूसरी शादी तो नही रचा ली । अभी उसकी प्रैक्टिस चली नही, कुछ मदद चाहता है, सो मै उसे मदद दूगा । लेकिन इसने तो, सान न गुमान, सिर पर बम ही गिरा दिया । मै समझता था कि यह लड़का गाय है और मै एक मकान उसके नाम करने जा रहा था ।

सन्तू . (**नौकर को आवाज देते है**) सन्तू ले भी आ हुक्का। (**आंगन से**) जी आया सरकार !

शिवराम : तुम्हे गुस्सा छोडकर बिगडी बात बनाने की कोशिश करनी चाहिए । शादी तो हो चुकी, लेकिन इससे पहले कि उस लडकी के पाॅव वहाॅ जमने पाये तुम्हे राजो को वहाँ भेज देना चाहिए ।

ताराचन्द : (**चिल्ला कर**) जब तक वह वेश्या वहाँ है, राजो वहाँ हरगिज नही जा सकती !

बृजनाथ : लेकिन पडित उदयशकर जो कहते है ।

तराचन्द : (**उसी तरह चिल्ला कर**) पडित उदयशकर चाहे जो कहे, जब तक वह लडकी वहाॅ है, राजो हरगिज़ वहा नही जा सकती । (**अचानक बिजली पहलवान और उसके साथियों से**) तुम लोग जाओ और जा कर अपना काम देखो । अव्वल तो मुझे उम्मीद नही कि कोई मामला

चलाने की हिम्मत करेगा, लेकिन अगर कुछ हुआ भी तो चिन्ता न करना। हजार-दो-हजार रुपया भी क्यो न लग जाय, तुम पर आँच न आयेगी, उसके साथियो मे से एकाध की टाग, गर्दन तोडना जरूरी था ताकि उसे पता चल जाय कि अगर वह सीधी राह न आया तो उसके साथ भी वही होगा जो विष्णु पडित के लडके के साथ हुआ।

[उठकर घूमते हैं। बिजली पहलवान और उनके साथियों की भीड़ छँट जाती है। अन्दर आंगन मे रानी और पूरन भागे आते हैं, पीछे-पीछे चींटी की चाल से आती हुई राजो भी है, जो आंगन की चौखट में ही अटक जाती है।]

रानी } एक साथ } क्यो पिता जी !
पूरन } } क्या फैसला कर आये ?

[लेकिन पंडित ताराचन्द की दृष्टि उनके ऊपर से होती हुई राजो पर चली जाती है, जो चुप-चाप अपनी किस्मत का फैसला सुनने के लिए दरवाजे मे खड़ी है और जिसका रंग कपास के फूल ऐसा पीला हो गया है।]

ताराचन्द : (लगभग आर्द्र होकर) राजो बेटी।

(राज वहीं खड़ी है।)

— : इधर आओ बेटी !

(राज धीरे-धीरे आकर उनके पास खड़ी हो जाती है।)

— : (उसे अपने पास तख्त पर बैठाते हुए) तू कितनी दुबली हो गयी है और कहती थी पहले से मोटी हो गयी

हूँ ! (खोखली सी दर्द भरी हँसी हँसते हुए) तू तो एक दम पीली हो गयी है । कोई बीमारी-ऊमारी तो नही ले आयी ससुराल से ?

रानी · इसे अभी मूर्च्छा आ गयी थी ।

ताराचन्द इस हालत मे मूर्च्छा न आती तो और क्या होता ! (**नौकर को आवाज़ देते है**) सन्तू, सन्तू !

सन्तू . (आंगन मे) जी सरकार ! (**हुक्का लिये भागता हुआ आता है**) जी. . . .जी !

ताराचन्द : भाग कर बाजार से आठ-दस आने का गाजर का मुरब्बा और कुछ चाँदी के वरक ले आ ! यह बहुत कमज़ोर दिखायी दे रही है ।

[ताराचन्द जेब से एक रुपये का नोट निकाल कर उसकी ओर फेंकते है । सन्तू चुप-चाप उठा लेता है। निचले सम्वादों में वह मौन-रूप से हुक्का रख कर गाजर का मुरब्बा लेने चला जाता है ।]

ताराचन्द (**हुक्के का कश लेकर राज के सिर पर प्यार का हाथ फेरते है**) तू किसी तरह की चिन्ता न कर बेटी, वह उस चुडैल के फदे मे फँस गया है । उस वेश्या ने. . . . . .

पूरन . वेश्या ? पर वे तो सुदर्शना बेरी से शादी करने जा रहे थे !

तराचन्द : (**सक्रोध**) हाँ वही ! वेश्या नहीं तो वह और क्या है ? जो लडकी एक विवाहित पुरुष के साथ नगे सिर, नगे मुह, बारीक कपड़े पहने ओठ-मुह रगे, आवारा

घूमती है, जिसे न अपना खयाल है न भले घराने की दूसरी लडकी का, वह वेश्या नही तो और क्या है ? मै कहता हूँ, वेश्याओ मे भी इतनी लाज-शरम होती होगी। क्यो बृजनाथ ?

बृजनाथ फैशन की मारी इन लडकियो और वेश्याओ मे क्या फर्क है ? वह उसकी बाहरी टीम-टाम से चौधा गया है, लेकिन जल्दी ही उरूता जायगा, मै लिखे देता हूँ।

शिवराम : यह तो बाहरी आकर्षण है, ताराचन्द । दो ही दिन में उतर जायगा।

ताराचन्द : भगवान तुम्हारा भला करे ! उसका तो सारा वेतन इसकी एक साडी पर खर्च हो जायगा।

पूरन : आखि़र आप फेसला क्या कर आये ?

ताराचन्द : एक भी भॉवर कम रह जाती तो मै रुकवा देता शादी ! विजली पहलवान भुरकस बना के रख देता सब का। लेकिन ब्याह हो चुका था। तो भी उस सिरफिरे पडित की टाग और दो चार के सिर फटे।

पूरन लेकिन प्रोफेसर मदन से क्या बात हुई ?

ताराचन्द . उसका अन्त शायद उन सब से बुरा होता, लेकिन अपने हाथो अपनी लड़की को विधवा बनाने.....

राज (**उनके मुंह के आगे हाथ रखते हुए**) पिता जी !

रानी . आपने पूछा नहीं प्रोफेसर मदन से कि तुम्हे इस लडकी से शादी करनी थी तो किसी दूसरी भली लडकी का जीवन क्यों नष्ट किया......?

ताराचन्द : पूछा नही, मेरे प्रश्नों के मारे नाको मे दम आ गया प्रोफेसर साहब का । एक बात मुह से न निकली । लगे हकलाने । मै तो उसके होश ठिकाने कर देता, लेकिन पडित उदय-शकर वहाँ पहुँच गये । अपने लड़के की करतूत का उन्हे भी उसी समय पता चला था । पगडी उतार कर उन्होंने मेरे पैरो पर रख दी और कहने लगे, "लड़के से गलती हो गयी है । आप चिन्ता न करे, हमारी बेटी को किसी प्रकार का कष्ट न होने पायगा, कुछ दिनो की बात है, इस लड़की का जादू उतरा कि वह उसी के चरणो मे आगिरेगा ।

(**हुक्का पीते है ।**)

बृजनाथ : यही तो मै कहता हूँ । जवानी के मद मे लड़के कई बार ऐसी गलतिया कर बैठते है ।

रानी · तो क्या इस ब्याह के बाद भी आप राजी को वहाँ भेजेगे ?

बृजनाथ · नही तो क्या बेटा उस चुडैल के पैर वहाँ जमने देगे ! इस समय वह राजो को भी रखने के लिए तैयार है ।

ताराचन्द (**सहसा हुक्का पीना छोड़कर सव्यंग्य और सक्रोध**) रखने के लिए तैयार है......क्या यह किसी घसियारे की लड़की है......किसी लोहार-सुनार की लड़की है...... रखने के लिए तैयार है !......जब तक वह वेश्या उस घर मे है, ताराचन्द की लड़की कभी वहाँ नही जा सकती !

शिवराम : देखो ताराचन्द, इस वक्त तुम गुस्से मे हो । उस लड़की के पैर वहाँ जम गये तो फिर राजो को वहाँ भेजना मुश्किल हो जायगा, क्या तुम उसे जिन्दगी भर घर बैठाओगे ?

(ताराचन्द केवल चुपचाप हुक्का गुड़गुड़ाते है ।)

रानी : लेकिन उन्होने राजी मे कुछ तो दोष बताया होगा ।

बृजनाथ : कुछ नही बेटी, उस पर बस उस लड़की का जादू सवार है । वह कहता है कि राज मे और मुझ मे किसी तरह की मानसिक समता नही ।

शिवराम मैने उसे समझाया था कि मानसिक समता एक महीने में नही हो जाती । सुदर्शन को आप बरसो से जानते है । राज को आप सिर्फ एक साल दीजिए, फिर आप देखिए कि आपमे और उसमे मानसिक समता होती है कि नही ।

बृजनाथ : जहाँ तक मेरा ख़याल है उसने यह काम अपने पिता से बदला लेने के लिए किया है ।

रानी : बदला ?

बृजनाथ : वह यहाँ ब्याह न करना चाहता था, उन्होने विवश किया । उसी की प्रतिक्रिया है यह शादी ।

रानी : लेकिन इस घरेलू झगडे मे एक दूसरी निर्दोष लडकी का जीवन नष्ट करने का उन्हे क्या अधिकार है ? और इस अपमान के बाद राज ही वहाँ क्यों जाय ?

बृजनाथ : राज का वह घर है । उस पर उसका अधिकार है, पति यदि भूल करता है तो प्रतिव्रता स्त्री उसे सदैव क्षमा कर देती है ।

रानी : लेकिन यदि स्त्री ऐसी गलती करती है तो क्या पति उसे क्षमा कर देता है ?

ताराचन्द : (**सहसा हुक्का पीना छोड़कर**) जब तक वह वेश्या उस घर मे है, राज वहाँ नही जायगी बृजनाथ ! अब इस

किस्से को छोड़ो। (**ज़ोर से हुक्के का कश खींचते हैं।**)
मदन शायद यह समझता है कि चार अच्छर पढ कर या दो अढ़ाई सौ रुपये की नौकरी करके वह ताराचन्द के कुल का अपमान कर सकता है, लेकिन उसे मालूम नही कि ताराचन्द अपने कुल के नाम और उस नाम की प्रतिष्ठा को सबसे ऊपर समझता है। कुल की मर्यादा का ही सवाल था कि रानी पिछले साल आयी तो फिर मैंने उसे नही जाने दिया। किसी तरह भी रहने की बात होती तो क्या मै उसे वापस न भेज देता, लेकिन तुम जानते हो, मै किस बात पर जोर देता रहा हूँ—त्रिलोक अलग होने को तैयार हो, उसे मान से रखने को तैयार हो तो फिर रानी जा सकती है और इसके लिए मुझे मकान और मोटर भी देनी पडे तो मै दे दूगा।

[**हुक्के का बहुत लम्बा कश लेते है, फिर किंचित धीमे और क्रोध भरे स्वर मे :**]

ताराचन्द . मैंने केवल पडित उदयशकर का स्वभाव देखा था बृजनाथ, नही उस कुल मे है क्या ? यजमानो की चिलमे भरते और भाडों की तरह गा-गाकर कथा बाचते उनकी सात पीढिया गुज़र गयी, ताराचन्द बेटी वाला सही, लेकिन वह अपने कुल का अपमान होता देखने के बदले बेटी को जहर दे सकता है......

[**सहसा पर्दा उठा कर पंडित उदयशंकर गले मे पल्ला डाले, दोनों हाथ बांधे प्रवेश करते हैं। उनके पीछे-पीछे कुछ और लोग भी हैं। राज हलका-सा घूंघट कर लेती है।**]

उदयशंकर : हमारी मजाल कि हम आपके कुल का अपमान करें,

पडित जी । हम बेटे वाले है, तो क्या हम इसी से बड़े हो गये ? हम तो बडे हुए कि आपने हमारे होकर हमे बडा बनाया। मै आपको रोकता रह गया, पर आप क्रोध-वश कार मे बैठकर चले आये, मै पल्ला गले मे डाले सीधा 'खाई वालो की धर्मशाला' से यहा आया हूँ। लडके का दिमाग फिर गया हो, वह अपनी औकात भूल गया हो, पर उसका बाप अपनी औकात नही भूला। उसकी इज्जत आपके चरणो पर है । (**सिर से पगड़ी उतार कर पंडित ताराचन्द के पैरों पर रख देते हैं ।**) चाहे रखिए चाहे ठुकराइए !

राज : (**सहसा उठते और अपने पिता के चरणों से पगड़ी उठाकर अपने ससुर को देते हुए**) पिता जी, आप क्या करते है ? (**फिर लगभग रुँधे स्वर मे ताराचन्द से**) पिता जी, मै जाऊँगी ।

ताराचन्द : जब तक वह लडकी उस घर मे है, तू वहाँ नही जायगी ।

उदयशंकर वह लडकी उस घर मे नही रहेगी । (**राज के कंधे पर हाथ रखते हुए**) वहा हमारी यही बेटी रहेगी ।

बृजनाथ : यदि राजी इस समय चली जायगी ताराचन्द, मान-अपमान का विचार छोड, विवेक से काम लेगी तो वह अपने पति को उस लडकी के कु-प्रभाव से बचा सकेगी । (**राजी से**) देख बेटी, तेरे पति ने एक भूल की है, तू दूसरी भूल न करना । उसकी गलती को क्षमा कर देना । उसे अपना लेना । उसे उसकी गलती की याद न दिलाना । उस लडकी को भी न कोसना । यह काम तू अपने सास ससुर के लिए छोड़ देना । तेरा पति उस

लड़की के पास जाय तो उसे न रोकना। वह लड़की तेरे पति के पास आये तो उससे घृणा न करना। यह आसान नही। बहुत-बहुत कठिन है। देवियों का काम है। पर हिन्दुस्तान की लडकियों ने देवियो से बढ़ के काम किये है और वे कई बार इस अग्नि-परीक्षा मे सफल हुई है। तू यह सब करेगी तो अन्त मे विजय तेरी होगी। उस दूसरी लड़की से वह कुछ ही दिनों मे उकता जायगा।

पूरन . किन्तु वह लड़की अब केवल दूसरी लडकी नही रही, उनकी ब्याहता बीवी है।

रानी : क्या आप राजी को सौत पर भेजेंगे ?

बृजनाथ : माता कौशल्या की एक छोड दो सौते थी।

पूरन · लेकिन दशरथ राजा थे। आप साधारण लोगो की बात कीजिए। और फिर कौशल्या ही कौन-सी सुखी रही ? चौदह बरस तक रोते-रोते उनकी आंखे अन्धी हो गयी। और कौन कह सकता है कि रामायण मे सत्य कितना है और झूठ कितना।

ताराचन्द : (**अत्यधिक क्रोध से**) पूरन ! अपने धर्मग्रन्थों का अपमान करते तुम्हे शर्म नही आती ?

रानी . जिस व्यक्ति ने राजी का इतना तिरस्कार किया, बिना किसी दोष के दूसरा ब्याह कर लिया, उसके पास जाने को, उसकी सेवा करने को आप कहते है ?

बृजनाथ : भगवान शकर की भांति हिन्दू देवियो ने कई बार विष-पान किया है।

पूरन : लेकिन मैं पूछता हूँ, विष-पान क्यो आवश्यक है ?

शिवराम . तो क्या तुम लोग चाहते हो कि यह जीवन भर यहां बैठी जलती कुढती रहे ?

रानी जले कुढेगी क्यो, पढ-लिख कर अपने पाव पर खडी होना सीखेगी ।

ताराचन्द · पूरन, बको मत ! सोच कर बात करो !

बृजनाथ . बेटा, पढाना-लिखाना लडकी को आर्थिक रूप से स्वतत्र बनाने के लिए होता है, लेकिन ब्याह का केवल यही पहलू तो नही, दूसरा भी है ! ब्याह का केवल आर्थिक पहलू होता तो राजे-महाराजे अपनी लडकियो के ब्याह न करते ।

पूरन . राजी का दूसरा ब्याह हो सकता है ।

उदयशंकर : पूरन !

राज : भैया !

पूरन : पुरुष एक स्त्री के होते दूसरा ब्याह कर सकता है तो स्त्री क्यो नही कर सकती, विशेषकर पुरुष के ठुकरा देने पर ?

बृजनाथ : कानून के अनुसार हिन्दू-ब्याह टूट नही सकता । कानून राजी को इस बात की आज्ञा न देगा ।

पूरन : प्रोफेसर मदन दे देगे ।

राज : **(अत्यन्त पीड़ा और दुख से, जैसे इस जिक्र ही से उसे कष्ट हो रहा है)** भैया !

उदयशंकर : आपको शर्म नही आती, अब ब्राह्मणो की बहू-बेटियां वेश्याएँ बनेगी ?

पूरन : किन्तु ब्राह्मणो की बहू-बेटियां क्या. ....?

ताराचन्द . (**गरजकर**) चुप रह पूरन !

राज . मै जाऊँगी, पिताजी !

ताराचन्द : नही, तू नही जायगी । पूरन और राजो की बात मै नही मानता । मदन यदि उस लडकी को छोड़ दे तो इस अपमान के बाद भी मै कहूँगा कि तू अपने पति के घर जा । लेकिन जब तक वह वेश्या उस घर मे है, मै तुम्हे हरगिज वहा नही भेज सकता । मेरी लडकी हर घड़ी अपनी सौत के मुह की ओर देखे, ब्राह्मण की बेटी होकर एक अज्ञात-कुल-शीला की चिरौरी करे, यह मेरा और मेरे कुल का अपमान है ।

राज : मै जाऊँगी, पिता जी !

ताराचन्द · अपने कुल के मान को तज कर भी ?

राज : मेरा कुल तो उसी दिन बदल गया, जिस दिन आपने मेरा हाथ दूसरे को दे दिया ।

रानी : गीली लकड़ी की तरह तुम्हे सुलगना पसन्द है ।

राज : मै यहा भी सुलगती रहूँगी जीजी (**पिता से**) मै आपके पाव पडती हूँ पिता जी, मुझे इसी घडी भेज दीजिए । मेरे देवता तुल्य ससुर को और न अपमानित कीजिए ।

[**ताराचन्द क्षण भर क्रोध से आंखे लाल किये अपनी लड़की की ओर देखते है, पर उसकी आंखों मे इतनी करुणा और आर्द्रता है कि विवश हो वे सर झुका लेते है ।**]

ताराचन्द · (**लगभग हुँकारते हुए**) अच्छा तुम्हारी मर्जी । (**उदय-**

शंकर से) आप ले जाइए पडित जी, लेकिन इतना याद रखिए कि ताराचन्द की बेटी उस घर मे हेय होकर नही रह सकती। जो हाथ उस विष्णु पडित के सिरफिरे लडके की टाग तोड सकते है, वे समय पडने पर अपनी लडकी को विधवा भी बना सकते है, उसका गला तक घोट सकते है। आप इसे मान से रखे तो आप जो चाहे मै कर दूगा ? मदन को नयी कार ले दूगा, कोठी बनवा दूगा। बस मेरी बेटी हेठी होकर न रहे !

उदयशंकर आपकी बेटी हमारी बेटी नही क्या ? वह हेठी होकर क्यो रहेगी ? वह हमारे घर की लक्ष्मी बन कर, हमारे माथे का मुकुट बन कर रहेगी।

(**वृन्दाबन खुश-खुश प्रवेश करता है।**)

वृन्दाबन ताराचन्द, बधाई हो, लो मुह मीठा कराओ और रानी को तैयार कर दो (**सहसा उन सबको वहां इकट्ठे और उनकी आकृतियों पर चिन्ता क्रोध, करुणा तथा दुख के साये देखकर**) क्यो, बात क्या है ?.....(**फिर एक दृष्टि सब पर डालते हुए**) क्या बात है ?

ताराचन्द . कुछ नही, यह पडित उदयशकर राजो को लेने आये है। तुम कहो, क्या त्रिलोक से मिले ?

वृन्दाबन मै कहता हूँ, मैने इस चतुराई से बात चलायी कि वह न केवल मान गया, बल्कि रानो को लेने आ रहा है।

ताराचन्द भगवान तुम्हारा भला करे ! तुमने मेरे वश को कलक के टीके से बचा लिया। तुमने रानो का ही जीवन नही बनाया, मेरी भी सबसे बडी चिन्ता दूर कर दी, पर यह चमत्कार हुआ कैसे ?

उदयशकर (**राज से**) चलो बेटी, तुम तैयारी करो !

राज मुझे तैयारी ही कौन करनी है । ट्रक बॅधा-बॅधाया तैयार पडा है ।

उदयशंकर चलो, दिखाओ कहा है ? (**अपने साथ के एक लड़के से**) महेन्द्र, तुम भाग कर तागा ले आओ ।

ताराचन्द : सन्तू . ..सन्तू ....वह सन्तू कहा है ?

उदयशकर . (**मुड़कर**) आप चिन्ता न करे पडित जी, मेरे साथ लडके है (**दूसरे लड़के से**) श्रीधर, तुम मेरे साथ आओ !

(**राज के पीछे जाते हैं । रानी भी उनके पीछे जाती है ।**)

रानी अरे तो कुछ खा पी तो लो । जब से आयी हो तुमने पानी तक नही पिया और तुम्हे मूर्च्छा आ गयी थी ।

(**उनके पीछे निकल जाती है ।**)

वृन्दाबन (**भेद भरे स्वर मे**) एक दिन अपने लडके का जिक्र करते हुए मैंने बातो-बातो मे त्रिलोक से उसके ब्याह और घरेलू जीवन की बात चला दी । उसके भाग्य को सराहा कि उसे रानी जैसी भले कुल की सुशील और समझदार लडकी मिली है । इस पर जल कर वह अपने वैवाहिक जीवन की असफलता का रोना रोने लगा । उसने रानी के विरुद्ध शिकायतो का एक दफ्तर खोल दिया । मैंने उसे समझाया कि जहा परिवार इकट्ठे रहते हैं, वहा बहुओ से ये शिकायते आम होती है । सौ मे से शायद एक बहू ऐसी मिले जिसके विरुद्ध ये शिकायते न हो ।

ताराचन्द . भगवान तुम्हारा भला करे !

वृन्दाबन : (**प्रशंसा से खुश होकर**) इस पर वह झेपा, फिर

कहने लगा.. ...इस दशा मे जब कि मै ने प्रैक्टिस अभी हाल ही मे शुरू की है मेरे लिए अलग घर बसाना मुश्किल है। मै ने कहा ...तुम अलग रहना चाहो और अपनी बीवी को ज्वाइंट फेमिली के उस झगडे-झॉझे मे रखकर उसका अपमान न करो तो तुम्हारे ससुर ही तुम्हारी सहायता कर सकते है । और मैंने दहेज मे मोटर और मकान न दे सकने का कारण बताया और कहा कि आज तुम अलग हो जाओ तो कल तुम्हे दोनो चीजे लेकर देना मेरा काम रहा ......

ताराचन्द : भगवान तुम्हारा भला करे !

वृन्दाबन : इस पर वह मान गया और खुद ही कहने लगा कि असल मे सौ मे से अम्सी जोडो के असफल रहने का कारण कुटुम्बो का सम्मिलित होना है। नये घर में आकर नयी ब्याही लडकियों को अपने व्यक्तित्व को नये सिरे से ढालने की कठिनाई से दो चार होना पडता है । जब वे इस कोशिश मे असफल रहती है, तो उन्हे प्रति-पल सास-ननदो के ताने सुनने पड़ते है । कहने लगा—"मै तो रानो को सचमुच मन से चाहता हूँ, उसकी और उसके पिता की इज्ज़त करता हूँ, लेकिन अपने मॉ-बाप और भाई-बहनो के हाथो मजबूर हूँ ।"

बृजनाथ : ये अनपढ सास ननदे जो न करें थोडा है ।

ताराचन्द : (**बृजनाथ की बात के बीच ही मे उठकर वृन्दाबन को गले चिमटाते हुए**) इस उपकार का वदला कैसे चुकाऊँ भाई, तुमने मुझे जिन्दगी भर के लिए खरीद लिया । मेरी बहुत बडी परेशानी दूर कर दी । (**और भी**

जोर से भींचते है, फिर पलट कर पूरन से) क्यो पूरन, मै कहता था न कि वृन्दाबन उसे मना लेगा (**वापस आते हुए पूरन के निकट रुक कर**) बुद्धिमान यो बिगडी बात बना लेते है और तुम कहते थे (**नकल उतार कर**) मै उससे बात तक करना अपमान समझता हूँ ।

वृन्दाबन . त्रिलोक किसी समय भी रानो को लेने आ सकता है, सुबह ही मुझे मिला था ।

पूरन : (**उसकी ओर ध्यान न देकर पिता की बात का जवाब देते हुए**) मेरा अब भी यही खयाल है ।

ताराचन्द . (**बैठने लगते है कि पूरन की बात सुनकर फिर उठते है, मुंह चिढ़ाते हुए**) मेरा अब भी यही खयाल है । (**उस के पास से होकर रानो को आवाज़ देते हुए खुशी-खुशी अन्दर की ओर जाते है**) रानो......रानो !

रानी : (**आँगन से**) जी आयी (**दरवाज़े के पास ही उन्हें मिलती है ।**) जी !

ताराचन्द : तुम भी तैयारी करो बेटा । (**उसके कंधे पर हाथ रखे वापस आते हुए**) त्रिलोक अभी तुम्हे लेने आ रहा है । वृन्दाबन कहता है कि .....

रानी आपने उन्हे मकान का लालच दिया है ?

ताराचन्द . लालच, वह तो मै तुम लोगो के ही नाम करने वाला था !

रानी : (**और भी दृढ़ता मे**) आपने उन्हे मकान का लालच दिया है ?

ताराचन्द : तुम तो पागल हो । वह तो मै तुम्हारे ही नाम करूँगा,

लेकिन बेटी स्त्री का धन उसके पति ही का होता है। तुम और त्रिलोक कोई दो थोडी हो।

रानी न मैं उनका घर चाहती हूँ, न आपका मकान! वे कुछ देर पहले आये थे और मैंने यह बात उन्हे समझा दी है।

ताराचन्द : क्या .....

रानी . मैं वहा नही जाना चाहती।

ताराचन्द पागल हो गयी है।

[पंडित उदयशंकर के पीछे राज प्रवेश करती है। अपने पिता का आशीर्वाद लेने को रुक जाती है।]

रानी : जिस व्यक्ति के समीप चन्द हजार के एक मकान का मूल्य मेरे मान से कही अधिक है, जो मुझे नही, मकान को चाहता है, मैं उस लोलुप की शक्ल तक नही देखना चाहती।

ताराचन्द · (**क्रोध से**) रानो!

वृन्दावन : हिन्दू देविया सपने मे भी कभी अपने पति के विरुद्ध ऐसे शब्द नही कहती।

पूरन . चाहे वह पति कितना भी अत्याचारी क्यो न हो?

ताराचन्द : पूरन!

वृन्दावन : तुम लोग गलत समझते हो। वह अत्याचारी नही, वह लोलुप भी नही, वह तो बेचारा गाय है। सारा दोष तो उसके माता पिता का है।

पूरन : (**व्यंग्य से**) बेचारा गाय!

वृन्दावन : रानो, वह वास्तव मे तुमसे प्रेम करता है। तुम्हारा

आदर करता है। तुम्हारे लिए तो वह अपने मां बाप तक को छोड़ने के लिए तैयार है।

रानी मैने कभी नही चाहा कि वे अपने मा बाप से अलग रहे, अपने मा बाप को छोड दे, लेकिन यदि इस प्रकार वे एक मोटर और मकान हथिया सके, तो इस बात का ढिढोरा पीटने मे भी उन्हे सकोच न होगा। आप कहते है, वे मुझ से प्रेम करते है, यदि मकान के साथ आप उन्हे मोटर भी ले कर देने का वचन दे तो वे मेरी पूजा तक करने लगेगे।

वृन्दाबन . (**शर्म दिलाते हुए**) रानी बेटी।

रानी . मै पूछती हूँ, इस लोलुपता का पेट आप कब तक भर सकते है और मै ही ऐसे लालची के साथ कब तक रह सकती हूँ ?

ताराचन्द : (**गरज कर**) तू अपने पति से घृणा करती है।

रानी (**निर्भीकता से**) मेरा रोम-रोम उससे घृणा करता है।

ताराचन्द . (**संयम खोकर**) रानो, तू बके जा रही है और मै चुपचाप तेरे मुह की ओर तके जा रहा हूँ। तू नही जानती, अपने पति के विरुद्ध सपने मे भी बुरी बात सोचना कितना बडा पाप है ! तू नही जानती, तू ने एक ब्राह्मण के घर मे जन्म लिया है, तुझे एक ब्राह्मण मा ने पाला है; तू किसी चाडाल के घर उत्पन्न नही हुई !

पूरन : जहा तक मनुष्यता का सम्बन्ध है, ब्राह्मण और चांडाल मे कोई अन्तर नही और फिर ब्राह्मण की लड़की का दिल चाडाल की लड़की से बड़ा नही होता और न वह पत्थर ही का......

ताराचन्द : (**गरजकर**) चुप रहो पूरन, और अपनी फिलासफी अपने पास रखो । (**रानी से**) तू समझती है, रानो, कि अपने पिता के सम्मुख तू ऐसी अधर्म की बात करेगी और वह चुपचाप सुन लेगा ?

रानी : आपके धर्म की बाते मैने बहुत सुन ली पिता जी, आपका धर्म भी पुरुषो का धर्म है ।

वृन्दाबन : मै कहता हूँ बेटी, त्रिलोक सचमुच तुम्हारा आदर करता है ।

रानी · मै उस व्यक्ति को आप से अधिक जानती हूँ ।

बृजनाथ तुम्हारे लाभ ही के लिए तो ये मकान तुम्हारे नाम कर रहे है बेटी ।

रानी : आप यह समझते है कि ये मकान मेरे नाम करके मुझ पर कोई उपकार कर रहे है ? ये मेरे गले मे सदा के लिए दासता की बेडी डाल रहे है । मुझे ऐसे व्यक्ति के साथ रहने को विवश कर रहे है जिसके लिए मेरे मन मे लेश-मात्र भी सम्मान नही । ये मुझे फिर उस नरक में ढकेलना चाहते है, जहा घुट-घुटकर मै अधमरी हो गयी हूँ । ये चाहते है, इनके नाम पर, इनके कुल के नाम पर कोई कलक न आये, चाहे इनकी लडकी घुट-घुट कर मर जाय !

ताराचन्द : (**अत्यधिक क्रोध से**) रानी !

रानी : (**पूर्ववत् बृजनाथ से**) मै उस व्यक्ति के साथ दो वर्ष तक रही हूँ और जितना मै उसे जानती हूँ, आप या चाचा जी नही जानते । एक मकान के लोभ मे वह मुझे

ले जायगा, वह मेरी प्रशसा और खुशामद भी करेगा, किन्तु क्या इतना मूल्य देने के बाद इस खरीदे हुए पति को मै पसन्द कर सकूगी ? उसका सम्मान कर सकूगी ? उसे पति परमेश्वर समझ सकूगी ?

ताराचन्द मालूम होता है इस निकम्मे, आवारागर्द लडके ने तेरा भी दिमाग खराब कर दिया है । पिता के नाते मेरा यह आदेश है कि तू अपने पति के घर जायगी ।

रानी · मै इस आदेश का पालन नही कर सकती !

ताराचन्द : (**चिल्लाकर**) तू अपने पति के घर जायगी या इस घर मे भी न रहेगी ।

रानी . मै इस घर को भी नमस्कार करती हूँ ।

(**हाथ जोड़कर चलने को उद्यत होती है ।**)

वृन्दाबन रानो बेटा, तू कहा जा रही है ? तू नही जानती कि तू लडकी है, तू कहा जायगी ?

रानी . (**अवरुद्ध कंठ से**) जहा सीग समायेंगे, चली जाऊँगी, किन्तु इस घर मे एक पल भी न रहूँगी ।

पूरन : इस बात की चिन्ता न कीजिए चाचा जी । रानो को कही और न जाना होगा । यह मेरे साथ जायगी । जिसे आप लोग निकम्मा और आवारा समझ रहे है, वह अपनी सारी आवारागर्दी छोड़ कर, तन मन से परिश्रम करेगा, कमायेगा और अपनी बहिन को इस योग्य बनायेगा कि वह अपने पावो पर खड़ी हो सके और अपने पिता की मोटर या मकान के बल पर नही, अपनी योग्यता के बल पर आदर-सम्मान पा सके ।

ताराचन्द : अच्छा, तो यह आग तुम्हारी लगायी हुई है ! निकल जाओ, तुम दोनो मेरे घर से निकल जाओ !

राज : (**आगे बढ़ कर अपने पिता को समझाते हुए**) पिता जी !

पूरन : चलो रानो, इन पिताओ और पतियो मे कोई अन्तर नही ।

वृन्दाबन · (**'आप क्या कर रहे हैं', के अन्दाज मे हाथ बढ़ाते हुए**) ताराचन्द ।

उदयशंकर (**'आप तो समझदार हैं', के अंदाज़ मे**) पडित जी !

बृजनाथ (**पूरन की ओर बढ़ कर समझाने के अन्दाज़ मे**) पूरन !

ताराचन्द : (**उसी क्रोध की दशा मे**) चले जायँ । मेरी आखो से दूर हो जायँ । ऐसी सन्तान से मै नि सन्तान भला । बचपन ही से इनकी मा मर गयी । इतनी मुसीबतो से मैंने] इन्हे पाला । क्या इसीलिए कि बडे होकर ये ऐसे निर्लज्ज और नाखलफ साबित हो ।

रानी : (**रुँधे हुए गले से**) आप अन्याय करते है पिता जी । हम आपके उपकारो का बदला नही चका सकते, किन्तु......

ताराचन्द : (**चीख कर**) चले जाओ, मेरी आंखो से दूर हो जाओ ।

राज . (**रानी की ओर बढ़ते हुए**) जीजी !

रानी (**जाते-जाते रुककर**) आज से हमारे रास्ते अलग होंगे राजो । मै प्रार्थना करूँगी कि तुम सुखी रहो ।

पूरन : स्वाभिमानियो के लिए आदि-काल से यह मार्ग खुला है, राजो ।

राज . मेरा मार्ग भी तो आदिम है, भैया ।

पूरन : परमात्मा तुम्हारे पांवो को छलनी होने से बचाये !
(रानी के कंधे पर हाथ रखते हुए) चलो रानो !

(चलते है ।)

वृन्दाबन : **(ताराचन्द को समझाने के लिए दोनों हाथ बढ़ाते हुए उसकी ओर बढ़ कर)** ताराचन्द !

बृजनाथ : **(पूरन को समझाने के लिए दोनों हाथ बढ़ाते हुए, उसकी ओर बढ़कर)** पूरन !

[ताराचन्द क्रोध से पागल, राज सहमी, उदयशंकर परेशान, वृन्दाबन ताराचन्द को और बृजनाथ पूरन को समझाने के लिए हाथ फैलाये खड़े हैं । रानी के कंधे पर हाथ रखे, पूरन जाने को कदम बढ़ाये है, जब पर्दा गिर जाता है ।]

परिशिष्ट

[रंगमंच के दो व्यावहारिक अनुभव]

प्रायः मैं अपने नाटक रेडियो पर नहीं सुनता। मेरे लगभग सभी नाटक रेडियो के विभिन्न स्टेशनों से ब्रॉडकास्ट हो चुके हैं, पर इनमें से दो चार ही को मैंने सुना है। यही हाल रंगमंच का है। दूसरे नगरों में स्टेज होने वाले एकांकियों को जाकर देखने की (निमंत्रण सदा मिलते रहे हैं) बात तो दूर रही, अपने शहर में होने वाले नाटकों को भी मैं प्रायः नहीं देखता।

मेरी इस वितृष्णा का कारण रेडियो या रंगमंच से मेरी बेदिली नहीं। रेडियो के माध्यम को मैं बड़ा सबल माध्यम मानता हूँ और रंग-मंच का मुझे जैसा शौक है, उसे सभी जानते हैं।

इस अन्यमनस्कता के कारण पर जब विचार करता हूँ तो लगता है कि जैसे मैं डरता हूँ—डरता हूँ कि कहीं खेलने वाले नाटक

का सत्यानास ही न कर दे। ऐसे न खेले कि उनके अभिनय की अनगढ़ता मे उसका मुख्य उद्देश्य ही खत्म हो जाय !

और मुझे शुरू-शुरू की एक घटना याद आती है :

शायद १९३८ की बात है। लाहौर मे नया-नया रेडियो स्टेशन खुला था। मैंने कुछ दिन पहले अपना पहला नाटक 'पापी' लिखा था और मुझे वह बड़ा पसन्द था। किसी मित्र के कहने पर मैंने वह रेडियो मे भेज दिया। वह स्वीकार हो गया और सबसे बड़ी बात यह हुई कि एक दिन जब मे स्टेशन पर गया तो मुझे मालूम हुआ, प्रसिद्ध एक्टर हीरालाल उसमे काम कर रहे है। हीरालाल चाहे अब एक कैरेक्टर एक्टर है, पर तब वे एक फ़िल्म मे नायक का रोल कर रहे थे। नाटक के सम्बन्ध मे अपने विचार व्यक्त करने के लिए वे मुझसे मिलने आये। साथ उनके एक सुन्दर लड़की भी थी। उन्होंने कहा कि नाटक मुझे बहुत पसन्द है और मै शान्तिलाल का रोल ऐसे अदा करूँगा कि आपको लुत्फ आ जायगा। एक दो डॉयलाग उन्होंने बोलकर भी दिखाये। फिर उन्होंने अपने साथ वाली लड़की की ओर संकेत करते हुए बताया कि 'छाया' की भूमिका मे यह काम करेगी और वे उन्हे ऐसा ट्रेण्ड कर देंगे कि सुनने वाले दंग रह जायंगे। ओठों के आगे हाथ रखकर उन्होंने यक्ष्मा की कृश-काय रोगिनी की खांसी की नकल की। उनके सिखाने पर जब लड़की ने वैसे ही खांसा तो मुझे रोमांच हो आया और मैंने तय कर लिया कि मै यह नाटक ज़रूर सुनूंगा।

मै उस समय जिस वातावरण मे रहता था, उसमे अपने यहां तो दूर, किसी मित्र अथवा पड़ोसी के यहां भी रेडियो नहीं था। नाटक की रात मैंने अपने दो-एक मित्रों को साथ लिया और दो मील चल कर शिमला पहाड़ी के पास रेडियो स्टेशन पहुँचा। विज़िटर्ज़ रूम में लाउडस्पीकर दीवार से लगा था, कुर्सियां उसके पास घसीट कर हम

बैठ गये, तभी एलान के बाद छाया की कमजोर आवाज़ सुनायी पड़ी ओर वह खांसी—पहले वाक्य ही ने मन के तार झनझना दिये और उस खांसी ने शरीर को कँपा दिया। हीरालाल ने बड़ा सुन्दर निर्देशन किया था।

हीरालाल की आवाज़ भी बड़ी गहर-गम्भीर और प्रभावशाली थी—ट्रेजेडी के उस अहसास के बावजूद नाटक की सफलता से मन मे हल्की सी खुशी का आभास भी था कि एक मोटी भद्दी आवाज़ आयी—"क्या हो रहा है, क्या होने वाला है, मै तो तीमारदारी करने आयी थी......"

और लगा कि जैसे किसी ने सीने मे घूंसा मार दिया। 'पापी' की 'रेखा' तेरह-चौदह बरस की लड़की है। लेकिन आवाज़ से लगता था कि बोलने वाली तीस पैंतीस बरस की है। मोटी और अनपढ़ है। लहजा उसका एकदम पंजाबी था और शब्द 'तुम्हारे' को वह बड़े बेतुकेपन से 'तुमारे, तुमारे' बोलती थी।

उन दिनों जरा सी बात मेरी नींद हराम करने के लिए काफ़ी थी। नाटक के इस उलटे छुरे या यों कहा जाय कि मोटी उलटी छुरी से ज़िबह किये जाने से मुझे कितनी तकलीफ हुई, इसका अन्दाज़ आप इस बात से कीजिए कि वह कसक अब भी बाकी है। इस बीच रेडियो की अपनी नौकरी के दिनों मे मैंने अन्सार नासरी द्वारा 'चिलमन', रफ़ी पीर द्वारा 'सुबह-शाम' (अंजो दीदी) और पिछले दिनों अचानक एस० एस० एस० ठाकुर द्वारा निर्देशित 'जय पराजय' भी सुना है और उनके निर्देशन मे मुझे कहीं त्रुटि दिखायी नहीं दी। इतने अच्छे प्रस्तुत होने वाले नाटकों को सुनना बड़ा सुख देता है। पर सुख का यह अहसास पहली असफलता की उस टीस को नहीं मिटा सका और न ही मुझे नाटक सुनने की प्रेरणा दे सका। पहली असफलता का अहसास भी

पहले प्रेम सरीखा है और दिल में न जाने कैसा घाव कर देता है जो कभी नहीं भरता।

रहा स्टेज का नाटक—तो इस बीच में बीसियों जगह मेरे एकांकी खेले गये हैं, पर दो अवसरों को छोड़कर मैं कभी अपना नाटक नहीं देखने गया। यद्यपि अपने नाटक को स्टेज पर वैसे ज़िबह होते मैंने कभी नहीं देखा, लेकिन नाटक लिखना शुरू करने से बहुत पहले मैंने वह घटना पढ़ी थी, जब प्रसिद्ध रूसी नाटककार चैखव ने अपना पहला नाटक 'सी-गल' (सागर-हंसिनी) देखा था और घोर निराशा में वह हाल से भाग गया था। चैखव की प्रेयसी लिडिया एवीलौव ने अपने संस्मरणों में उसका बड़ा दर्द भरा वर्णन किया है। मुझे उस स्थल पर सदा लगता है कि चैखव नहीं स्वयं मैं ही वहां था, वह नाटक मेरा ही था, जिसे एक्टरों, आलोचकों और प्रति द्वन्द्वी दर्शकों ने क़त्ल कर दिया। और चैखव—वह इतना निराश हुआ कि राजयक्ष्मा का शिकार हो गया।

और मैं कभी अपना नाटक देखने नही गया। नाटकों के सूक्ष्म (Subtle) भाग साधारण एमेचर अभिनेताओं के बस के नहीं होते और उन्हें ज़िबह होते देखना अपने ही बच्चों को अपने ही सामने ज़िबह होते देखने के बराबर है।

लेकिन गत दो-तीन वर्षों में न केवल मुझे अपने नाटक देखने को बाध्य होना पड़ा है, बल्कि उनमें योग भी देना पड़ा है। १९५१ में प्रयाग विश्वविद्यालय के म्योर हॉस्टल की ड्रामेटिक एसोसिएशन ने मेरा नाटक 'छठा बेटा' चुना। वे दो घण्टे का नाटक खेल न सकते थे और काट-छांट कर एक घण्टे का बनाने में बहुत से सम्भाषण काटने पड़ते थे और मुझे खासा बुरा लग रहा था। लेकिन एमेचर-नाटक-आन्दोलन में काट-छांट कर ही सही, नाटकों का खेला जाना मैं ज़रूरी समझता हूँ। नाटकों का ठीक प्रस्तुतीकरण अभीष्ट है, पर वह तभी होगा जब पहले

नाटक करने और देखने की प्रवृत्ति देश भर मे जगेगी। 'शा' के बारे मे सुनता हूँ कि वे घण्टों अपने नाटकों की रिहर्सलें कराते थे, कहां किसको खड़ा होना है, कहां से कौन सम्वाद बोलना है, छोटे से छोटे ब्यौरे का वे ध्यान रखते थे। नाटककार की हैसियत से, विशेष कर ऐसे नाटककार की हैसियत से, जिसे रंगमंच ही का नहीं, अभिनय का भी अनुभव है, मै ऐसा न चाहता होऊँ, यह बात नहीं, पर भारत और इंग्लिस्तान की परिस्थितियों मे आकाश-पाताल का अन्तर है। वहां रंगमंच की परम्परा भारत की तरह एकदम् कभी नहीं खोयी। यहां जैसा शून्य वहां कभी नहीं हुआ। फिर वहां एमेचर रंगमंच यहां की अपेक्षा कहीं उन्नत और साधन-सम्पन्न है और लोगों मे नाटकों की बड़ी भूख है। यहां के एमेचर मंच पर अभी दो वर्ष पहले तक कोई मौलिक बड़ा हिन्दी नाटक होता ही नहीं था। इसलिए पन्द्रह-बीस मिनट के नाटक के बदले जब म्योर हॉस्टल वाले एक घण्टे का नाटक खेलने को तैयार हो गये तो मैंने मन मे सोच लिया कि जब मुझे देखना ही नहीं तो नाटक कैसे जिबह किया जाता है, मै इसकी क्यों चिन्ता करूँ। सो दीनदयाल का पार्ट एकदम काट दिया गया और भी कुछ दूसरे परिवर्तन किये गये, और मैंने उन्हें नाटक खेलने की इजाज़त भी दे दी।

"आप नाटक देखने जरूर आइएगा," नाटक के निर्देशक श्री सतीशदत्त पाण्डेय ने कहा।

मैंने उनसे अपनी वितृष्णा की बात कही तो बोले, "हमें जब विश्वास हो जायगा कि नाटक अच्छा हो रहा है तभी आपको कष्ट देंगे।"

कुछ ही दिन बाद पाण्डेय फिर आये, साथ में उनके एक और युवक था, "ये है मिस्टर आर० पी० जोशी"! उन्होंने परिचय दिया, "हॉस्टल

के बहुत ही अच्छे अभिनेता है, इन्हें पण्डित बसन्तलाल का पार्ट दिया गया है। पर उसमे इन्हें कुछ कठिनाई पेश आ रही है।"

"क्या कठिनाई है ?" मैने पूछा।

"दूसरे दृश्य मे जब बसन्तलाल के नाम तीन लाख की लाटरी निकल आती है और वे इसकी सूचना अपनी पत्नी को देते है तो हँसी-हँसी में वे रोने कैसे लग जाते है ?" जोशी ने कहा।

मै कुछ क्षण उस युवक की ओर देखता रहा, फिर मैने पूछा—

"आपने कभी शराब पी है ?"

"जी नहीं !"

"आपके परिवार मे किसी ने पी है ?"

"जी नहीं !"

"आपने कभी किसी को खूब पिये देखा है ?"

"जी नही !"

"आप कभी ठेके मे गये है ?"

"जी नहीं !"

"तो भाई आप यह भूमिका किसी और को दीजिए !"

युवक का मुंह उतर गया। उसे 'छठा बेटा' मे पण्डित बसन्तलाल की भूमिका बड़ी अच्छी लगती थी और उसे करने को उसका बड़ा मन था।

"आप एक बार करके दिखा दीजिए, फिर मै कर लूंगा।"

मै व्यस्त था। भुंझला कर उठा। चपरासी को आवाज देकर मैने दफ्तर से 'आदिमार्ग' की एक प्रति मँगायी, क्योंकि उसमे छठा बेटा का रंगमंच-संस्करण संकलित है।

"मै एक नहीं दो बार करके दिखा देता हूँ," मैने कहा, "पर जब तक आप दो-एक बार किसी ठेके में जाकर शराब मे धुत्त किसी आदमी को बाते करते; क्षण मे हँसते, क्षण में रोते, क्षण में सिर फोड़ने-फोड़वाने

को तैयार और क्षण मे गले मिलने को तत्पर नही देखते, ध्यान से उसकी भाव-भंगिमाओं का निरीक्षण नहीं करते, आपके लिए पण्डित बसन्तलाल की भूमिका को मंच पर सफलता से उतारना कठिन होगा।"

और मैने दो-तीन बार पण्डित बन्तलाल का वह सम्वाद करके दिखाया।

जोशी चकित सा देखता रहा, फिर उसने मेरे हाथ से किताब ले ली, "लेकिन आप जो सम्वाद बोल रहे है, वे हमारे वाले नाटक से भिन्न है ?"

"आप उस संस्करण से कर रहे होंगे जो अलग से छपा है।" मैने कहा।

"जी हां !"

"आप नाटक सफलतापूर्वक करना चाहते है तो 'आदिमार्ग' से कीजिए, क्योंकि अलग से जो नाटक छपा है, वह पाठ्यक्रम के लिए तैयार किया गया है, इसलिए उसमे कहीं-कहीं क्लिष्ट शब्द आ गये है। फिर 'साले' शब्द काटकर उसकी जगह 'कम्बख्त' कर दिया गया है। हालांकि कम्बख्त कहने मे वह बात नही पैदा होती। यह गाली वाक्य के अन्त में आती है और शराब मे धुत्त होने के कारण पण्डित बसन्तलाल लटके के साथ इसे देते है"—और मैनें उन्हें वैसा एक सम्वाद बोलकर दिखाया।

दोनों हँसी के मारे लोट-पोट हो गये।

"चाहे मै और कुछ कर सकूं या नहीं," जोशी बोला, "पर यह लटका मै जरूर दे दूंगा।"

उन्होंने 'आदिमार्ग' की एक प्रति ले ली। मैने उन्हें 'नीटा' (नार्थ इण्डियन थियेट्रिकल एसोसिएशन) के डायरेक्टर श्री विजय बोस से मिला दिया। जोशी की कठिनाई उन्हें समझा दी, पार्ट करके दिखाया और उनसे कहा कि नाटक स्टेज करने मे उनकी सहायता कर दें।

नाटक वाले दिन नाटक शुरू होने से एक घण्टा पहले जोशी स्वयं आया ।

"अश्क जी आप अवश्य चलिए!" उसने अनुरोध किया, "सुबह ड्रेस-रिहर्सल हुई थी और सब का खयाल है कि नाटक बहुत अच्छा हो रहा है। हमने सम्वाद भी 'आदिमार्ग' के अनुरूप सरल बना लिये हैं । ठेके पर जाने का अवसर तो मैं नहीं पा सका, पर आपने जैसे पार्ट करके दिखाया और बोस साहब ने जैसे बताया, उसे उतारने की मैंने पूरी कोशिश की है ।"

मेरा जाने को जरा भी मन न था। पर जोशी ने बड़ा अनुरोध किया। कौशल्या चलने को तैयार हो गयी तो मैं भी चल दिया ।

लेकिन नाटक देखने के बाद लगा कि अच्छा हुआ, हम देखने आ गये । जोशी की भूमिका यद्यपि मेरे खयाल मे ४५ प्रतिशत सफल रही, धुत्त शराबी की चाल में जो लड़खड़ाहट आ जाती है, बाहों और टांगों पर जैसे उसका अधिकार उठ जाता है, वैसा कुछ जोशी के यहां नही था। खुशी की बातें करते-करते वह आंसू भी नहीं बहा सका, पर 'साले' जहां जहां भी आया उसने ऐसे लटका देकर कहा कि दर्शक हँसी के मारे लोट-पोट हो गये ।

शेष पात्रों मे डाक्टर हंसराज, चचा चानन राम, कैलाश और गुरु की भूमिकाओं मे सर्व श्री एस० पाण्डेय, एन० पन्त, एम० सारस्वत तथा आर० शंकर बड़े सफल रहे ।

चाचा चानन राम का तो मेक-अप देखकर ही हँसी आ जाती थी।

मां और कमला की भूमिका लड़कों ही ने की । मां का अत्यधिक करुण पार्ट ज़रा भी नहीं आया, पर कमला की भूमिका में जिस लड़के ने पार्ट किया, उसने लड़कियों से भी अच्छा किया। जब डाक्टर हंसराज ने दूसरी बार कहा—मैं डाक्टर हूँ मेरी पोजीशन है तो उसने (उन्होंने

कमला को घूंघट काढ़े वहीं पीढ़े पर बैठी दिखाया था) सव्यंग्य ऐसे "हुँ हुँ" किया कि दर्शक अनायास ठठाकर हँस दिये ।

अन्त को भी उन्होंने जरा बदल दिया । 'छठा बेटा' के पहले संस्करण का अन्त यों था—

[तभी उनकी (पं० बसन्तलाल की) दृष्टि धरती पर गिरे हुए लाटरी के टिकेट पर चली जाती है । वे उसे उठा लेते हैं, उसे आंखों के पास ले जा कर पढ़ते है । तभी सब कुछ उनके सामने साफ़ हो जाता है । सिर झुक जाता है और एक दीर्घ-निश्वास उनके ओठों से निकल जाता है ।]

पाण्डेय जी को आपत्ति थी कि जहां तक दर्शकों का सम्बन्ध है, यह अन्त प्रभावोत्पादक नहीं । क्योंकि पिछली पंक्ति मे बैठे लोगो को यह दीर्घ-निश्वास और तज्जनित मुख-मुद्रा दिखायी न देगी । सो अन्त यों किया गया ।

[तभी उनकी दृष्टि धरती पर गिरे हुए लाटरी के टिकेट पर चली जाती है । वे उसे उठा लेते हैं और उसे हाथ मे लिये और पढ़ते हुए उठते हैं । तभी सब कुछ उन पर प्रकट हो जाता है । चौंककर वे चिल्ला उठते है—"तो क्या यह सपना था"—और फिर चारपाई पर लुढ़क जाते हैं ।]

जोशी ने यह टुकड़ा इतना अच्छा किया कि जब दृश्य पर पर्दा गिरा तो लोग अनायास करतल-ध्वनि कर उठे । अजीब बात यह है कि मै स्वयं वे सब त्रुटियां भूल गया और बेसाख्ता ताली बजा उठा ।

दो बातों का पता 'छठा बेटा' के उस प्रदर्शन मे चला । रंगमंच पर होना यह चाहिए कि जब किसी स्थल पर लोग हँसे तो अभिनेता

क्षण भर को मौन हो जायें। 'छठा बेटा' में दर्शक इतना हँसेंगे और नाटक इतना सफल रहेगा, यह न सोचा था। इसलिए अभिनेताओं को खबरदार न किया था। वे इस बात का खयाल नहीं रख सके और बहुत से सम्वाद सुनायी नहीं दिये। सिनेमा के पर्दे पर कभी-कभी आवाज़ बन्द हो जाने से जैसे तस्वीरों के ओठ हिलते दिखायी देते हैं, कुछ वैसा ही दृश्य वहां दिखायी दिया। दो साल बाद 'अलग-अलग रास्ते' खेलते समय मैंने 'नीटा' के सभी सदस्यों को इस बात से खबरदार कर दिया और 'अलग-अलग रास्ते' की सफलता मे इस छोटी सी बात का बड़ा हाथ है। राज जोशी और कौशल बिहारीलाल ने दूसरे एक्ट मे इस बात का बड़ा खयाल रखा। एक भी सम्वाद नही मरने दिया और हाल लगातार कहकहाज़ार बना रहा।

दूसरी बात जिसका आभास उस रात हुआ, वह थी नृत्य-गान-विहीन आधुनिक बड़े नाटक की सफलता। आज तक हमारे यहां या तो ऐतिहासिक नाटक खेले जाते रहे है या नृत्यगान वाले एकांकी या कंसर्ट! ऐसा लम्बा सामाजिक नाटक भी एमेचर मंच पर सफल हो सकता है, जिसमे एक भी नाच या गाना न हो, यह उसी रात मालूम हुआ। जहां तक मेरा सम्बन्ध है, यदि ऐसे नाटक की सफलता मे मेरा विश्वास न होता तो मै ऐसा नाटक लिखता ही क्यों, लेकिन अपनी आंखों के सामने उसे सफल होते देखकर, लोगों को बात-बात पर ताली बजाते देखकर मेरा विश्वास और भी पक्का ज़रूर हुआ। यद्यपि मेरे विचार से नाटक केवल ४५ प्रतिशत सफल हुआ, लेकिन यह तो मालूम हो गया कि यह कितना अच्छा हो सकता है और कैसे दर्शकों को हँसा-रुला सकता है।

मुझसे अधिक उसका प्रभाव श्री विजय बोस पर हुआ और जब मैंने १९५३ के अपने मसूरी प्रवास में 'अलग-अलग रास्ते' की अन्तिम

पाण्डुलिपि तैयार की और आ कर उन्हें दिखायी तो उन्होंने तय किया कि 'नीटा' की ओर से अगला नाटक वे एकांकी न करके बड़ा करेंगे, 'अलग-अलग रास्ते' करेंगे और पैलेस थियेटर में करेंगे।

'नीटा' इलाहाबाद के निम्न-मध्य-वर्गीय आर्टिस्टों की संस्था है, जिसमें बड़े अच्छे अभिनेता हैं, पर सब के-सब साधन-हीन हैं। १९५१ में मेरे ही यहां रेडियो स्टेशन इलाहाबाद, अग्रसेन हाई स्कूल तथा एकाउण्टेण्ट जनरल के दफ्तर के चन्द कलाकारों की उपस्थिति में इसका सूत्रपात हुआ। पहले-पहल 'नीटा' ने मेरा ही एकांकी 'पर्दा उठाओ पर्दा गिराओ' खेला, फिर एक साल बाद मेरा ही दूसरा एकांकी 'मस्केबाजों का स्वर्ग' खेला। फिर श्री भगवती चरण वर्मा के 'दो कलाकार' और 'सब से' बड़ा आदमी खेले। इस बीच 'नीटा' के आर्टिस्ट दूसरी संस्थाओं में योग देकर न केवल उनके नाटक सफल बनाते रहे, बल्कि स्वयं भी बड़ा कीमती अनुभव प्राप्त करते रहे।

'नीटा' के लिए 'अलग-अलग रास्ते' के चुने जाने में प्रसिद्ध हिन्दी-कवि श्री भारतभूषण अग्रवाल का भी हाथ है। उन्हें मेरा नाटक 'आदिमार्ग' बड़ा पसन्द था। वे जब लखनऊ में थे तो वे 'आदिमार्ग' स्टेज करना चाहते थे। लेकिन जब सब तैयारी लगभग पूरी हो गयी तो उनका तबादला इलाहाबाद हो गया।

यहां आने पर जब उन्हें श्री विजय बोस से मालूम हुआ कि मैंने 'आदिमार्ग' को फिर से लिखा है और उसे तीन एक्ट का बना दिया है तो वे बड़े प्रसन्न हुए। 'नीटा' की एक मीटिंग रखी गयी, वहां 'अलग-अलग रास्ते' पढ़ा गया और यही नाटक किया जाय, यह तय हुआ।

लेकिन तब मैं संकोच में पड़ गया। 'पैलेस थियेटर' इलाहाबाद का प्रसिद्ध थियेटर है, उसमें नाटक सफल हो जाय तो क्या बात है, पर

यदि असफल रहे तो सिविल लाइन्स मे निकलना मुश्किल हो जाय। 'चैखव' के 'सी-गल' के प्रथम अभिनय की बात मेरी आंखों मे घूम गयी।

जब मैने अपनी शंका प्रकट की तो श्री अग्रवाल और विजय बोस दोनों ने कहा कि यदि नाटक रिहर्सल मे आपको अच्छा न लगे तो न किया जायगा। और मै आश्वस्त हो गया।

•

'अलग-अलग रास्ते' वास्तव मे 'आदिमार्ग' ही का परिवर्तित रूप है। हुआ यह कि 'छठा बेटा' के बाद मै इसी थीम पर उतना ही बड़ा नाटक लिखना चाहता था। यदि मै रेडियो मे* नौकर न होता तो निश्चय ही मै तीन एक्ट का नाटक लिखता पर तब मुझे हर दूसरे महीने एक न एक नाटक रेडियो के लिए लिखना पड़ता था। रेडियो मे दो घंटे का नाटक हो न सकता था। जिन दिनों मै रेडियो मे नौकर हुआ बड़े से बड़ा नाटक आध घण्टे का हो सकता था। लेकिन १९४३ मे इण्टर-स्टेशन-प्ले होने लगे, अर्थात् एक नाटक सभी स्टेशनों से ब्रॉडकास्ट होता था— कभी सजीव और कभी रेकार्ड होकर ! इण्टर-स्टेशन-प्ले होने लगे तो स्पर्धा भी जगी और अच्छे नाटकों की मांग भी बढ़ी। अवधि भी आधे घण्टे से बढ़कर ४५ मिनट हो गयी। तब मेरे दिमाग में 'अंजो दीदी' और 'अलग-अलग रास्ते' के आधारभूत विचार थे। पहले मैने 'अंजो दीदी' लिखना शुरू किया। एक एक्ट लिखकर मैने रेडियो के ड्रामा इंचार्ज को दे दिया। उन्हें वह इतना अच्छा लगा कि उस एक एक्ट ही को पूरे एकांकी के रूप मे ब्रॉडकास्ट करना उन्होंने स्वीकार कर लिया। रफ़ी पीर ने उसे प्रस्तुत किया और इतना अच्छा प्रस्तुतीकरण रेडियो पर मैने कभी नहीं देखा। 'अलग-अलग रास्ते' को मैने किसी न किसी तरह ४५

* अश्क जी १९४१ से ४४ तक आल इंडिया रेडियो के दिल्ली स्टेशन से नाटककार के रूप में सम्बद्ध थे।

मिनट की अवधि मे समो दिया और यह 'आदिमार्ग' के नाम से कई बार ब्रॉडकास्ट हुआ ।

यद्यपि 'अंजो दीदी' और 'अलग-अलग रास्ते' अपने एकांकी रूप में स्टेज पर भी बड़े सफल रहे । लेकिन मै सन्तुष्ट न हुआ । 'अंजो दीदी' चाहे लोगों को बिल्कुल पूरा लगता था, लेकिन मुझे एकदम अपूर्ण दिखायी देता था । अब उसके पूर्ण रूप मे उसे जो लोग पढ़ेगे वे मेरे असन्तोष को समझ जायँगे ।

'अंजो दीदी' मे तो खैर सिवा इसके कि एक और एक्ट लिखना शेष था, मुझे कोई त्रुटि न लगती थी, पर 'अलग-अलग रास्ते' , 'आदिमार्ग' के रूप मे बड़ा ही त्रुटिपूर्ण मालूम होता था ।

पहले तो यह कि ताराचन्द जब अपने जमाई प्रोफेसर मदन को दूसरी शादी करने से रोकने जाते है तो दस ही मिनट बाद वापस आ जाते है । रंगमंच लाख भ्रम (Illusion) सही पर उनका इतनी जल्दी आ जाना समझने वालों को खटकता है । और सत्य का भ्रम नही होने देता । दस मिनट मे, कार ही मे सही, कैसे पं० ताराचन्द खाई वालों की धर्मशाला मे पहुँच गये और कैसे (शादी हो ही चुकी सही) उनसे लड़-झगड़ कर वापस भी आ गये ?—यह बात अनायास मन मे उठती है ।

दूसरे पूरन और रानी का चरित्र उसमे अपूर्ण दिखायी देता है । रानी पर अपने भाई का प्रभाव है, पर वह भाई कैसा है, जिसकी शिक्षा बहन को पति और पिता—दोनों को छोड़कर चले जाने के लिए उद्यत कर देती है, उस भाई का मानसिक स्तर कैसा है, इस सब का पता 'आदिमार्ग' से नहीं चलता । पूरन के एक दो व्यंग्य-वाक्य और मार्क्स और लेनिन की तस्वीरे है, लेकिन वे सब पूरन के चरित्र की महत्ता बता सकने मे नितान्त कम पड़ जाती है ।

तीसरे ताराचन्द का चरित्र भी जैसा मै चाहता था 'आदिमार्ग' मे नहीं उतर पाया। ताराचन्द को मैं एक कठोर पिता के रूप मे देखता था। पर 'आदिमार्ग' का ताराचन्द, लिजलिजा, ढुलमुल किंचित हास्यास्पद और रूढ़िग्रस्त उतरा।

'आदिमार्ग' को 'अलग-अलग रास्ते' के रूप मे आने तक १० बरस लग गये। मै बेशुमार उलझनों मे फँसा रहा, उपन्यास और कहानियां लिखता रहा, लेकिन इच्छा रहने पर भी इन नाटकों को पूरा नहीं कर सका।

इधर १९५१ मे 'नीटा' के संस्थापन के बाद लगातार इन्हे पूरा करने की बात मन मे आती रही, पर 'छठा बेटा' की सफलता ने कुछ ऐसा प्रोत्साहित किया कि १९५२ में मैंने उसे खत्म कर डाला।

जिन दिनों 'अलग-अलग रास्ते' की रिहर्सल हो रही थी, मै अपना उपन्यास 'बड़ी-बड़ी आंखें' लिख रहा था। रिहर्सलें श्री विजय बोस और श्री भारत भूषण अग्रवाल ने करवायीं। भारत भूषण नाटक के दस-पन्द्रह दिन पहले बीमार हो गये तो सारा बोझ श्री विजय बोस पर आ पड़ा। क्योंकि यह पहले से तय था कि नाटक अच्छा न होगा तो स्टेज न किया जायगा, इसलिए अन्तिम कुछ रिहर्सल मेरे यहां हुईं। और तो सब ठीक हो रहा था, लेकिन स्टेज पर कौन कहां होगा, यह ठीक न था, अन्तिम दृश्य में खासी भीड़ जमा हो जाती थी। वह सब इन अन्तिम रिहर्सलों में नियत किया गया और यद्यपि मै पूर्णरूपेण सन्तुष्ट न हुआ तो भी नाटक खेल लिया जाय, इसकी अनुमति मैंने दे दी। स्वयं भी नाटक के दिन स्टेज पर उपस्थित रहा।

नाटक हमारी सब की आशाओं से कहीं ज्यादा सफल हुआ। ताराचन्द की भूमिका में विजय-बोस, पूरन के रूप में राज जोशी, त्रिलोक की भूमिका में कौशल बिहारी लाल, सन्तू के रूप में ताराचन्द गौड़

बड़े ही सफल उतरे। के० बी० लाल, पी० सी बनर्जी और अब्बास ने भी नाराचन्द के मित्रों की भूमिका को खूब निबाहा। रानी की भूमिका में ललिता चटर्जी ने बड़ा सुन्दर अभिनय किया। श्रीमती बिन्दु अग्रवाल राजी की भूमिका में उतरीं। वे इसलिए भी प्रशंसा की पात्र हैं कि उन दिनों उनके पति श्री अग्रवाल सख्त बीमार थे, वे अस्पताल जाती थी, रिहर्सल करती थीं, अपनी बच्चियों को देखती थी और अपना पार्ट उन्हें शब्दशः याद था। रंगमंच के लिए ऐसी निष्ठा अलभ्य है। नाटक समाप्त हुआ तो दर्शक हाल के बाहर नहीं जा रहे थे। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि इससे हम लोगों का दिल बहुत बढ़ा। नटक के बाद ही सब अभिनेता मेरे घर चाय पर आये और गयी रात तक इस सफलता के नशे में सरशार रहे।

अब इतने दिन बाद जो उस शाम को याद करता हूँ तो लगता है कि 'अलग-अलग रास्ते' की सफलता चमत्कार से कम न थी। मन के मुताबिक केवल दो रिहर्सलें हुई। ड्रेस रिहर्सल एक भी नहीं हुई। पैलेस के स्क्रीन पर रोगन हो रहा था, इसलिए स्टेज पर जगह नहीं मिली। आधी रिहर्सलें स्टेज पर और आधी पैलेस के बरामदों में हुई। क्योंकि सेटिंग का कुछ आभास अभिनेताओं को देना जरूरी था, इसलिए पैलेस के स्टेज को नाप कर मैंने अपने काटेज (Cottage) के आगे चाक से स्टेज बनाया और उस में अभिनेताओ की गतिविधि को निश्चित किया।

पैलेस वालों ने हमको मैटनी के लिए हाल दिया था और हमको हाल छै बजे खाली कर देना था। डा० रूबी मुकर्जी (यद्यपि वे नीटा की सदस्य नहीं, पर हमारी प्रार्थना पर) स्टेज सेट करने में हमारी मदद कर रही थी। चार बज गये जब सेटिंग खत्म हुई तो उन्होंने आदेश दिया कि लाइट्स ऑन की जायँ। तब मालूम हुआ कि बल्ब तो है ही नहीं। विजय बोस चिल्ला रहे हैं कि तत्काल नाटक शुरू होना चाहिए और डाक्टर रूबी चिल्ला रही हैं कि बल्बों का इन्तजाम करो। जिन

महानुभाव के जिम्मे यह ड्यूटी लगायी गयी थी, वे पता नही कहां गायब थे। तब डाक्टर रूबी ने खुद अपनी जेब से पैसा खर्च करके, पता नही कहां से, बल्ब मँगाये। यह तय है कि वे ऐन वक्त पर हमारी मदद न करतीं तो हमारा नाटक, सफल होना तो दूर, शुरू ही न हो पाता।

नाटक का पहला दृश्य जोरो से हो रहा था कि पर्दे पर तैनात व्यक्ति ने मुझसे कहा, "मुझे बता दीजिएगा कि मुझे पर्दा कहा गिराना है ?" मै चकराया। यो ही तमाशा देखने के लिए गया था, कोई ड्यूटी मेरे जिम्मे नही थी। लेकिन मेरा नाटक...सफलता-असफलता मे मै साझे का भागी... भागा-भागा ग्रीन-रूम मे गया... कही से ढूंढ़-ढांढ़ कर नाटक की एक प्रतिलिपि लाया और पर्दे वाले के पास आ खड़ा हुआ, तभी प्रॉम्पटर ने कहा, "काल बेल बजाइए", 'काल बेल बजाइए।" अब मालूम हुआ कि काल बेल पर कोई आदमी नियुक्त ही नही। खेल के अन्त तक ये दोनों कर्तव्य मै सरंजाम देता रहा।

अभी खेल कुछ ही बढ़ा था कि पर्दे वाला, "सम्हालिए अपने पर्दे, मै चला !" कहता हुआ बाहर की ओर बढ़ा। मेरे पांव तले से धरती खिसक गयी। बढ़कर मैने उसे रोका। मालूम हुआ कि उसके दो आदमियों को पास नहीं दिये गये है। तब 'नीटा' का जो भी मेम्बर सामने पड़ा, उसे डाट कर मैने कहा 'इसके आदमियों को बुला कर फ़र्स्ट क्लास मे बैठा दो !'......यह नखरा उसका तब था जब कि पर्दा उठाने और गिराने के लिये उसे पैसे देकर बुलाया गया था।

जहां तक अभिनय का सम्बन्ध है, एक दो बाते उल्लेखनीय हैं—

श्री जगदीशचन्द्र माथुर ने अपने एकाकी संग्रह की भूमिका मे नाटक खेलने वालों को जो परामर्श दिये है, उनमे सबसे पहला है—क्या आपके पात्रों को अपना-अपना पार्ट याद है या वे प्रॉम्पटर के आसरे काम

चलाते हैं.....'अलग-अलग रास्ते' मे कुछ लोग ऐसे थे, जिन्हे अपना पार्ट याद नही था और वे प्रॉम्पटर का मुंह तकते थे। इन्हीं की बदौलत अन्त का एक बड़ा महत्वपूर्ण सम्वाद कट गया। हालांकि दर्शकों को कुछ मालूम नही हुआ पर लेखक के कलेजे पर छुरी चल गयी। दूसरी ओर कौशल बिहारी लाल और राज जोशी को पार्ट अच्छी तरह याद होने से, उन्होंने दूसरा ऐक्ट इतना अच्छा किया कि वह नाटक को उठा कर सफलता के शिखर पर ले गया। दूसरे एक्ट मे पूरन और त्रिलोक लगभग आध घंटे तक स्टेज पर रहते हैं। नाटक खत्म करके मैंने मित्रों को सुनाया था तो उन्होने कहा था—सम्वाद कितने भी दिलचस्प क्यो न हों पर यह बोर करेगा। लेकिन राज जोशी और कौशल बिहारी लाल के सुन्दर एक्टिंग के कारण दर्शक हँसते-हँसते लोट-पोट हो गये।

'छठा बेटा' के अभिनेताओं को यह मालूम न था कि लोग हँस तो चुप हो जाना चाहिए। इसलिए कुछ बड़े सुन्दर संवाद मर गये। लेकिन 'अलग-अलग रास्ते' के इस दूसरे एक्ट मे एक अन्य कारण से एक बहुत ही अच्छा संवाद खत्म हो गया और इस बात का मुझे दुख रहा।

दर्शकों की एक दूसरी प्रवृत्ति भी होती है। वे यदि किसी अभिनेता की एक आध भाव-भंगिमा या संवाद पर हँसते हैं तो फिर उसकी हर अदा पर लगातार हँसते चले जाते है, चाहे संवादों मे हँसी की गुंजाइश हो या न हो। जिस प्रकार फिल्म के पर्दे पर हास्य रस के प्रसिद्ध अभिनेता वी० एच० देसाई की सूरत देख कर ही लोग हँसने लग जाते थे, इसी तरह थियेटर के दर्शक अपने प्रिय अभिनेता की हर अदा पर ठहाके लगाने लगते हैं। 'अलग-अलग रास्ते' मे पूरन का पार्ट राज जोशी ने इतनी अच्छी तरह अदा किया कि दर्शक उसकी हर बात पर हँसने लगे। दूसरे एक्ट के अन्त मे रानी का बड़ा ही करुण संवाद है, जहां वह अपने पति द्वारा कचहरी के फ्लैट की बात सुनकर दिवा-स्वप्न मे

खो जाती है । ललिता यह पार्ट बहुत अच्छा कर रही थी—सामने थियेटर हाल की छत की ओर देखते हुए वह अपने सुख-सपने मे गुम थी । उसे आदेश था कि वह 'कार' का शब्द सुनकर चौंके और पलटे, लेकिन 'त्रिलोक' और 'रानी' के संवादों के बीच मे पूरन का भी एक सम्वाद था । राज जोशी ने उसी बेपरवाही और व्यंग्य से उसे अदा किया (यद्यपि दर्शकों के मूड को देखकर उसे संजीदगी से अदा करना चाहिए था) दर्शक ठठा कर हँसे, ललिता समय से पहले पलटी और उस सुन्दर सम्वाद की आत्मा मर गयी।

'अलग-अलग रास्ते' मेरे निकट पचास-पचपन प्रतिशत से अच्छा नहीं हुआ तो भी इससे मेरा बड़ा दिल बढ़ा और मैंने इस वर्ष 'अंजो दीदी' का दूसरा बड़ा एक्ट जिसे दस बरस से मैं पूरा करने की सोच रहा था लिखकर खत्म कर दिया ।

इस सब के लिए मैं इन एमेचर संस्थाओ का आभारी हूँ जिनके साहसपूर्ण प्रयास मेरी प्रेरणा का कारण बने । 'नीटा' के सदस्यों के प्रति मैं क्या औपचारिकता निभाऊँ, वे सब तो मेरे अपने हो गये है ।

इलाहाबाद
१-१२-५४

उपेन्द्रनाथ अश्क